हास्य-रस की प्रथम लड़ी

महिला-शासन

लेखक—

चिरंजीलाल पाराशर

प्रकाशक—

राकेश पब्लिकेशन्स, गाज़ियाबाद

भूमिका

"वे धन्य हैं जिनके वजूद से हमारे चेहरे पर हास्य की एक भी थिरकन दौड़ती है और आंखों में उल्लास की एक भी किरण झांकती है" यह वाक्य किसी धर्म-ग्रन्थ का नहीं है, परन्तु अगर आज के संघर्षों में पिसे हुए दलित और पीड़ित समाज का कोई धर्म हो तो मैं इस वाक्य को आप्त वाक्य स्वीकार करने के लिये तत्पर हूँ। हास्य की यह उदात्त और पवित्र परम्परा हिन्दी में अभी कायम नहीं हुई है। हास्य के नाम पर फार्स (Force) उपस्थित करना और वह भी घटिया किस्म का, अगर कोई विरासत अपने पूर्ववर्तियों से हिन्दी के हास्य लेखक को मिल सकती है तो यही। कुछ लोग ऐसे हो सकते हैं जो व्यंग को ही हास्य मानकर उपरोक्त अभिमत को अपने लिए कसरेशान मानें, लेकिन हास्य और व्यंग में उतना ही अन्तर है, जितना उल्लास और विवेक में, हालांकि फलितार्थ दोनों भावनाओं का एक ही है।

श्री चिरंजीलाल पाराशर का "महिला-शासन" हास्यरस की सुन्दर गल्पों का संग्रह है। इन गल्पों में उन्होंने लोक-जीवन में प्रचलित उन शब्दों का समूह इकट्ठा करने की कोशिश को ही हास्य रस का परिपाक नहीं माना है—जिन्हें यौन-विकारों से पीड़ित लोग बहुधा सड़कों पर कहते घूमते हैं। अपने पूर्ववर्तियों की तरह इन कहानियों में उन्होंने बल-पूर्वक ऐसे स्थल भी ठूसने की दुश्चेष्टा नहीं की है—जहां कहानी के पात्रों

को गोबर की मांद में गिराकर शीर्ष-आसन किए बिना पाठकों का मनो-रंजन करना होता है या पीठ में पूँछ लगाकर लोगों को हंसाना पड़ता है।

हास्यरस के इस फूहड़ प्रदर्शन के विपरीत श्री चिरंजीलाल पाराशर ने अपनी प्रत्येक गल्प में दैनिक जीवन का जीवन्त-चित्र खींचा है और उसकी विसंगतियों में हास्य का निर्मल निर्झर बहाया है। "महिला-शासन" में उन्होंने राज्य-शासन में महिलाओं के बढ़ते हुए अधिकारों का मखौल उड़ाया है। सिद्धान्ततः आप चाहे उनके निष्कर्षों से सहमत न हों परन्तु हँसे बिना आप नहीं रह सकते। उनकी सभी कहानियाँ जीवन के विशिष्ट पहलुओं से ओतप्रोत हैं।

क्या राजनीति, क्या परम्परा, संगीत, साहित्य और क्या धर्म—सभी पर उन्होंने छींटे कसे हैं और जीवन की अच्छी जानकारी प्रकट की है। उनकी इस विविध-विषयी दृष्टि से सम्पन्न होने का कारण यह है कि वे एक मेहनतकश के जीवन में आने वाले जटिल संघर्षों से निकल कर साहित्य की ड्योढी पर आए हैं। यदि वे हास्यरस के लेखक न बनते तो निश्चय ही आग उगलने वाले लेखक बनते। जीवन की भट्टी में तप कर लिखने वाले लोग या तो क्रान्ति का शंख अपने साहित्य में फूंकते हैं या फिर वह साहित्य की खिड़की में बैठकर अपनी असलियत भूलकर समाज के झूठे मूल्यमानों पर इतराने वाले लोगों का मजाक उड़ाते हैं। "महिला-शासन" की कहानियों में मजाक है और व्यापक-जीवन-दर्शन न सही, तथापि वास्तविकता की झाँकी उनमें अवश्य देखी जा सकती है। यूँ तो सर्वथा निष्प्रयोजन रहकर भी हास्य का अपना महत्व है लेकिन निष्प्रयोजन हास्य केवल फेफड़ों के व्यायाम करने में सहायक हो सकता है, उससे पाठक अपनी धमनियों में हर्ष और आह्लाद का उद्वेग अनुभव नहीं कर सकता।

इस संग्रह में कुल मिलाकर इक्कीस कहानियाँ हैं। विषयों के अनुकूल सभी की भाषा स्वाभाविक गति से चलती है। भाषा सरल, मुहावरेदार

और रवानी से भरी हुई है। मध्यवर्ग के चित्र खींचने में जिस प्रकार रंगों की आवश्यकता होती है "महिला-शासन" के लेखक में स्वाभाविक रूप से उभर कर सामने आए हैं। इन कहानियों की सफलता का यही मूल-मन्त्र है।

यह संग्रह श्री चिरंजीलाल पाराशर का सर्वप्रथम कहानी संग्रह है। मेरा विश्वास है कि इस प्रकाशन से ही हिन्दी के तरुण हास्य लेखकों में उनका स्थान सुरक्षित हो जाएगा और जैसे वहुधा सभी अच्छे हास्य लेखकों के साथ होता है, उनके पसन्द करनेवालों की एक बड़ी तादाद बन जायगी, जो कि उन्हें सर्वथा ही सक्रिय रहने की प्रेरणा करती रहेगी।

इन शब्दों के साथ मैं श्री चिरंजीलाल पाराशर का अभिनन्दन करता हूँ और साहित्य क्षेत्र में उनका स्वागत करता हूँ।

रंग महल, दिल्ली

—महावीर अधिकारी

दो-चार शब्द

हास्यरस क्या है और उसके छोटे-बड़े कितने आकार-प्रकार हैं, उनके चक्कर में डालकर आपको जिज्ञासु बनाने की मेरी माशा भर तो क्या इकन्नी भर भी अभिलाषा नहीं।

जब से मैंने हास्य रस के लिखने का आरम्भ किया है तब से आज तक अपने लेखों, कविताओं तथा कहानियों में सदा पाठकों शीशा ही दिखाने का प्रयत्न किया है, यह बात दूसरी है कि कुछ लोगों को शीशे से नज़र चुराने की आदत पड़ गई हो। साप्ताहिक वीर अर्जुन, हिन्दुस्थान, मतवाला, तरंग, ऊषा, युगधर्म, समाज आदि पत्रों में कभी इस ख्याल से मैंने कुछ नहीं लिखा कि उनकी इच्छा के अनुरूप लिखकर उनसे आने वाले ८)—१०) के मनीआर्डर की, अपने जीने की सीढ़ियों पर बैठकर प्रतीक्षा करता रहूँ।

सात साल तक साप्ताहिक 'वीर अर्जुन' के गांडीव के तीर नामक कालमों को में लिखता रहा, उन दिनों भी भले ही किसी कारणवश सम्पादक लोग मेरे शीशे पर कहीं-कहीं स्याही के धब्बे लगाते रहे हों परन्तु अपने राम अपने पास से सदा स्वच्छ ही शीशा भेजते थे।

लगभग ६०—६५ कहानियाँ मैंने लिखीं परन्तु उनमें वास्तविकता को छोड़कर काल्पनिक छाया के पीछे कभी नहीं भागा। इसी तरह 'महिला-शासन' में भी केवल प्रथम कहानी को छोड़कर शेष जितनी कहानियां हैं, वह आपको, आपके समाज को, आपकी इच्छाओं और आपकी सरकार को शीशा मात्र ही है। प्रकाशकों से दोस्ती न होने के कारण स्वयं अपनी जमा-पूँजी खर्च करके इस पुस्तक को आपके सामने मैंने रखा है। यदि आपके दाम्पत्य-जीवन, स्वास्थ्य तथा ज्ञान में इससे कुछ वृद्धि हो सकी तो मैं समझूंगा कि मेरे पैसे खारी पानी में नहीं गये।

गाज़ियाबाद

चिरंजीलाल पाराशर

महिला-शासन

सूची

१.	महिला-शासन	१
२.	गंगाजल की एक बूँद	१६
३.	इत्तिफाक की बात	२१
४.	पर्दे का रोग	३२
५.	पाप की खोज	३७
६.	लज्जा की नीलामी	५०
७.	नया मुर्गा	५६
८.	गायिका के तख्त के नीचे	६७
९.	नीली साड़ी	७३
१०.	तीर्थ-यात्रा	८१
११.	मकान की तलाश	८८
१२.	प्रेम प्रैक्टिस	९२
१३.	देवीजी ने कुत्ता पाला	९८
१४.	शरियत का शासन	१०६
१५.	वाक्युद्ध	११४
१६.	चेहरे की चूनाकारी	१२२
१७.	नारी-सुधार योजना	१२७
१८.	भूलोक के अनुभव	१३४
१९.	सुसराल के वह दिन	१४९
२०.	किराये का कमरा	१५४
२१.	घूँसों के देश में	१५९

महिला-शासन

चुनावों के दिन थे, आज रात को लगभग १२ बजे तीन नये दलों के नेताओं के जवाबी चुनावी भीषण-भाषण सुनकर घर लौटा था। भाषण सुनते-सुनते कमर का कचूमर निकल गया था इसलिये आते ही सीधा खाट पर जा पड़ा और पता नहीं कब वहाँ पहुंच गया जहां हमारे बिहारी भाई और बंगाली भाई एक दिन अन्न के अभाव में जा पहुँचे थे।

देश में चुनाव, बुखार की तरह फैल गया था। घर-घर चुनावों के मरीज पड़े थे। प्रेसों में चुनाव-ज्वर उपचार के नुस्खे तैयार हो रहे थे और अखबार वाले उन नुस्खों का प्रचार कर रहे थे।

स्वप्न शुरू हुआ। देश की दुर्दशा पर दया खाकर एक दिन भगवान् ने रात को सोते हुए सारे देश के नेताओं की आत्माओंको बुलाया और उनके सामने एक छोटा-सा भाषण देकर उनसे यह अपील की क्योंकि अभी आप लोग एक दूसरे पर कीचड़ उछालने, गालियाँ देने में कुछ कच्चे हैं और अभी आप लोगों का चुनावी ज्ञान परिपक्व अवस्था तक नहीं पहुंचा, इसलिये अच्छा यह है कि अगले चुवावों अर्थात् ५ वर्ष तक और आप लोग इन बातों का अभ्यास करलें और अगले चुनावों के लिये अभी से ही अखाड़े खोद लें। इस बीच में सरकारों को चलाने का भार घर की सरकारों के हवाले कर दें क्योंकि पुरानी सरकारों का कायम रखना तो अप्रजातान्त्रिक कार्य होगा और नये चुनावों के लिये

आप लोग रहे अभी अधूरे। इसलिये सबसे अच्छा उपाय यही है कि यहाँ पर 'महिला-शासन' स्थापित कर दिया जाय।

महिला-शासन की स्थापना से एक जो सबसे बड़ा लाभ होगा, वह यह कि 'घाटे के बजट' बनने बन्द हो जायेंगे, और मेरी राय में अर्थ-शास्त्र का ज्ञान जितना नारी में कूट-कूट कर भरा है आप लोगों में उतना नही है। एक सीमित राशि से सब काम सुन्दरता से निकालने की दुर्लभ कला का ज्ञान नारी को १५ वर्ष की आयु मे ही हो जाता है जब कि पुरुष मरने के बाद भी उसे प्राप्त करने में प्राय: असफल ही रहता है।

दूसरे एक धर्मनिरपेक्ष और अहिंसक देश के लिये यह सरकारें रहेंगी भी उपयुक्त। आपसी मारपीट के मामलों में हाथापाई या डंडे-बाज़ी की अपेक्षा-जीभ-पिटाई पर वह अधिक विश्वास करती हैं; और यदि कभी हथियार उठाने का अवसर आ भी गया ता भी वह अपने घरेलू हथियार—चकला, बेलन, चीमटा आदि का ही प्रयोग अधिक करती हैं—जलती लकड़ी यदि किसी महिला ने कभी किसी के मार दी तो समझ लीजिये एटमबम मार दिया। सो एटमबम का प्रयोग बहुत कम होता है।

पुलिस-विभाग का बहुत-सा खर्च भी बच जायेगा क्योंकि कोई भी पुरुष, महिला राज्य में तो चोरी-डाके डालेगा नहीं और यदि कोई डालेगा भी तो वह अपनी पकडाई के लिये ज्यादा हील-हुज्जत नहीं करेगा, जनाना सरकार के कुछ सिपाही सारे शहर की व्यवस्था के लिये बहुत हुआ करेंगे।

इसके अतिरिक्त सबसे सुखदाई बात यह होगी कि दंगाई भीड़ों पर काबू पाने के लिये गोली चलाने की बजाय गालियाँ चलाई जाया करेंगी; और औरतों के हाथ से शायद ही कोई ऐसा मनहूस मर्द होगा जो चाँद-

पिटाई पसन्द करे। अतः यह झगड़ा भी समाप्त हुआ। न बन्दूकों की जरूरत न कारतूसों की।

बन्दूकों और कारतूसों की बचत के अतिरिक्त प्रकाशन विभाग में भी काफी बचत हो जाने की आशा है। ब्राडकास्टिंग विभाग पर तो ताला ही लटका दिया जायेगा।

यह एक सचाई है कि औरतों के पेट में प्रत्येक बात इसी तरह फुदकती रहती है, जैसे पानी में मेंडक। बस जो भी कोई नई सरकारी घोषणा हुई वह या तो पोस्टरों पर छपवाकर जनता तक पहुँचा दी या दो चार कुटनी-किस्म की औरतों को बतला दीं। वह उसे इसी तरह से प्रसारित कर देंगी जैसे आलइंडिया रेडियो कभी-कभी कवि सम्मेलनों के द्वारा बड़े उत्साह के साथ अंटशंट कविताओं को।

हाँ, एक थोड़ीसी दिक्कत है और वह है छुट्टियों की अधिकता की। साथ ही एक लाभ भी है कि यह एक साथ छुट्टी न लेकर अपनी प्राकृतिक आवश्यकता के अनुसार ही लेती रहा करेंगी और काम में परेशानी नहीं होगी।

रहा प्रश्न सृष्टि-निर्माण के समय का, उसके लिये छुट्टी के दिनों में ओवरटाईम से भी काम लिया जा सकता है। बाद में बच्चे की परवरिश का भार बाप पर रहेगा ही।

सब नेताओं ने भगवान की इस नई योजना को एक स्वर से सिर हिला कर स्वीकार कर लिया और उनके स्वीकार करते ही यमदूतों के दस्ते उन्हें उनके बिस्तरों पर उठा-उठा कर फिर डाल गये।

दूसरे दिन सरकार बदल गई। प्राचीन मंत्रियों ने अपनी जगह अपनी बीबियों को भेज दिया और उनका ही अनुकरण अन्य सरकारी पदाधिकारियों तथा कर्मचारियों ने किया। जो लोग विधुर थे, उन्होंने अपनी या तो प्रेमिकाओं को भेजा या शादी का सर्टिफिकेट पेश करने के लिये १-१, २-२ मास की अवधि मांग ली। कुछ ब्रह्मचारी ऐसे भी थे,

जिन्होंने बुढ़ापे में शादी करने से इंकार कर दिया और स्तीफा दाखिल कर दिया।

सवेरे उठकर जब बाजार गया तो देखा कि शहर का नक्शा बदल चुका है। जगह-जगह दीवारों पर पोस्टर लगे हैं और उन पोस्टरों को आदमियों के झुंड खड़े पढ रहे हैं। एक पोस्टर पर लिखा था—"सरकारी आज्ञा से इस पोस्टर द्वारा सूचना दी जाती है कि आज से कोई भी पुरुष यदि रात के १० बजे के बाद शहर में घूमता पकड़ा जायगा तो आवारा-गर्दी के अपराध में उसे सजा दी जा सकेगी। हां, यह नियम, कंगलों, साधुओं, बुजुर्गों और विद्यार्थियों पर लागू नहीं होगा। शहर के सिनेमा घर ६ बजे रात के बाद नहीं चल सकेंगे। किसी पुरुष का किसी महिला को देखकर सीटी बजाना, आँखें मटकाना, फिल्मी गीत गाना, सीने पर हाथ रखना या हाय-हाय करना बदचलनी का प्रमाण माना जायेगा और सजा दी जा सकेगी।

दो शादी करने वाले आदमी, उनके वह सब सहायक जिन्होंने किसी भी रूप में, उस शादी में भाग लिया है, जेल के भागी होंगे।

सरकार का समाजवादी दृष्टिकोण होने के कारण, महिलाओं को यह आज्ञा दी जाती है कि कोई भी कुमारी, ब्रह्मचारी, विधवा, बाल विधवा या सधवा आज से पर्दे का उपयोग नहीं करेगी। नेत्रों को शर्मा कर, मटका कर, झुका कर या नचा कर चलना वर्जित करार दिया जाता है।

चरित्र-निर्माण के लिये—"वात्सायन की बहू" "मनु की मां" "पतिधर्म की पराकाष्ठा" और प्राचीन शृंगार रस के कवियों की कविताओं के संग्रह जैसे समाजिक और धार्मिक ग्रन्थ पढ़ना, कहानी मासिक पत्रों की कहानियाँ पढ़ना या सुनना, जयशंकरप्रसाद की कामायनी के कुछ अध्यायों का अध्ययन करना और दिल्ली के प्राचीन कहानीकार की वह कहानी पढ़ना जिसकी सदाचार जगत में अच्छी

ख्याती है तथा एक साहित्याचारी क्रांतिकारी की कहानियों का पाठ करना आवश्यक माना गया है।

सामाजिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक और पारिवारिक संबंध सुदृढ़ करने के लिये सरकार पुरुषों के मेलों में स्त्रियों को और स्त्रियों के मेलों में पुरुषों को जाने की राय देती है। इसीलिये हमारी सरकार ने घरेलू कामकाज की शिक्षा लेने के लिये जहाँ कुछ पुरुषों को अमेरिका और रूस भेजने का निश्चय किया है वहाँ नाज-नखरों और टीप-टाप की ट्रेनिंग के लिये कुछ महिलायें पैरिस और लंदन भेजी जायेंगी। इनमें से पुरुष मंडलों का प्रतिनिधित्व बालब्रह्मचारी, पत्निभक्त लोग या वह बुड्ढे त्यागी नेता करेंगे जो अपने सिद्धान्त पर घरवालियों तक का त्याग कर चुके हैं या घरवालियों ने जिन्हें त्याग दिया है। कुछ पुराने कलाबाज वह लीडर जो वानप्रस्थ की ओर न जाकर गृहस्थ आश्रम की ओर फिर मुड़ आये हैं, इस सेवा के लिये, लिये जा सकते हैं।

महिला-मंडलों के प्रतिनिधित्व के लिये कुछ फिल्मी अभिनेत्रियों, कुछ रेडियों गायिकाओं और कुछ प्रेम की कहानियाँ लिखने वाली कालिज कन्याओं का सहयोग प्राप्त कर लिया गया है।

पिछली सरकार जहाँ इस बात का ध्यान रखती थी कि प्रत्येक भारतीय राजदूत की पत्नी का सुन्दरी होना आवश्यक है, इसी तरह हमारी सरकार भी इस बात का ध्यान रखेगी कि महिला राजदूती का पति सदाचारी, ब्रह्मचारी, स्वल्प-आहारी और शिष्टाचारी होने के साथ-साथ घरेलू काम-कला में भी दक्ष हो। नीचे लिखा था—

मंत्री समाज-सुधार विभाग की ओर से प्रकाशित।

बाजार से निकल कर अपने एक मित्र कमलाकांत के घर की ओर मुड़ा। आज वह पहिले की तरह बैठक में नहीं मिले। आवाज़ देने पर अन्तःपुर से निकल कर आये और वहीं मुझे भी साथ ले गये।

मित्र भूख-भगाऊ स्थान पर डटे चूल्हे पर रोटियों की सृष्टि कर-

करके भगवान् की सृष्टियों के हवाले कर रहे थे। आँखों से पानी बह रहा था। मुझसे बोले—"भोजन कीजियेगा ?"

"देखकर ही तृप्ति हो गई !" मैंने उत्तर दिया।

"आ किधर से रहे हैं आप ?"

"बाजार से आ रहा हूँ। मगर आज भाभी कहाँ गईं ?"

"जहाँ उन्हें जाना था !"

"यानी जहाँ सबको जाना है ?"

"अरे नहीं, जहाँ हमारे जाने का निषेध है।" इन लीडरों ने सत्यानाश कर दिया।

"वैसे तो आपको कमाने से छुट्टी मिल गई ?"

"और इन बन्दरों से कौन सुलटे ? भगवान् बचाये ऐसी छुट्टी से, दिन भर इन्हीं के काम में लगा रहता हूँ।"

मित्र की दुर्दशा पर दया खाकर मैं चला आया।

बाहर निकल कर डाक लेने का ध्यान आ गया और सीधा डाकखाने की ओर चल दिया। डाकखाने के पहिले थाना पड़ता था। यहाँ पर भी सब काम बाकायदा हो रहा था यानी किसी सिपाही ने लाठी किसी तरह ले रखी थी और किसी ने किसी तरह। दरोगाजी राइट-लेफ्ट से खुद अनिभिज्ञ थे। जब कभी वह गांव की पाठशाला में बारहखड़ी याद करने गये होंगे, उस समय शायद किसी महिला ड्रिल मास्टर का जन्म भी न हुआ था। इसलिये वह अपनी बुद्धि के बल पर ही खड़े होकर अपनी पुलिस को स्वदेशी इशारों में कवायद करा रहे थे—"एक के पीछे एक खड़ी हो जाओ री, लाठियों को सीधी खड़ी कर लो, पनघट की चाल से सीधी चलो, अब गोहरे की चाल से लौटो।"

कवायद चल रही थी, अभ्यास बढ़ाया जा रहा था। कवायद के बाद छुट्टी दे दी गई।

मैं अन्दर थाने में गया। मुझे देखते ही दरोगाजी की त्योरी चढ़ गई। बोले—

"क्या काम है ?"

"पुलिस रिपोर्ट चाहिये ।"

"क्या मतलब ?" दरोगाजी ज़रा चकराये ।

"जी, मैं प्रेस रिपोर्टर हूँ । आपके थाने में कल कितने कत्ल हुए, कितनी चोरियाँ हुई, कितने चाकू चले और कितनी जेबें कटीं. यह सब अखबार में छापने के लिए जानकारी लेने आया हूँ ।"

"अपना सर छापो जाकर । यह सब बदमाशियें तुम्हारे राज मे होती थी, हमारे यहाँ लुच्चों को कतई रियायत नहीं दी जाती ।"

दरोगाजी ने अपना मुँह चढ़ाकर घुमा लिया और मैं अपना पिटा-सा मुँह लेकर लौट आया सड़क पर ।

डाकखाने में जब आया तो यहाँ पर भी हालात नये ढँग के ही थे । अपने मुहल्ले में डाक बाँटने आने वाले बुड्ढे पं० परमानन्द पिछले साल अपनी बुढ़िया से हाथ धो बैठे थे और इस साल नौकरी से हाथ धुल गये ।

बड़ा मुश्कल स पता चला कि अब चमेलीदेवी नाम की देवी हमारे मुहल्ले की चिट्ठी रसा हैं ।

उनको खोजते-खोजते थक गया । जिससे भी उनका पता पूछता वह उनके हुलिये का वर्णन कर देता था या पहिने हुए कपड़ों का नक्शा खींच देता ।

बड़ी कठिनाई से एक जगह उनके दर्शन हुए । १८—१९ साल की फैशन परस्त कलियुगी कन्या थीं । प्रत्येक गली की डाक छांटने का असफल प्रयत्न-सा कर रही थीं क्योंकि अपने देश में जब हरेक तरह की स्वतन्त्रता है तो फिर भाषा के बारे में परतंत्रता लोग कैसे सहन करें । उनका अभी तक यह अटल विश्वास है कि जब तक चिट्ठी पर अंग्रेजी में पता न हो, तब तक चिट्ठी अपने स्थान पर नहीं पहुँचती, अंग्रेज भले ही अपने स्थान पर पहुंच गये हों । इसीलिये यह बेचारी

भारतीय विद्याओं की नहरों में गोते खाती, डूबती-उछलती रुआसी हो रही थी।

मैंने कहा—"जी, मेरी चिट्ठी दे दीजिये!"

"घर पहुंच जायेगी?" उनका तीखा जवाब था।

"यदि आज्ञा हो तो छांट लूँ इस ढेर में से अपनी।"

"दूसरों की तो नहीं ले जाओगे, इसकी क्या गारंटी है?" अब की बार जरा मरे बैल की सी मुस्कराहट उनके चेहरे पर आई।

"कसम ले लो।" मैंने उत्तर दिया।

"पुरुषों की कसम—वह दिन लद गये।"

लाचार हो वहां से भी लौट आया और घर की ओर ही चल दिया।

घर की ओर जब जा रहा था तो रास्ते में पार्क की ओर से कुछ मीठी-मीठी आवाजें आयी। कान लगाया तो पता चला कि पार्क में कहीं संगीत-सम्मेलन हो रहा है या किसी नेता की अगवानी में स्कूल की लड़कियाँ कोई गीत गा रही हैं, जैसा कि हमारे यहां रिवाज़ है। इसी विचार से पार्क के अन्दर चला गया।

यहाँ पर न तो किसी का स्वागत हो रहा था और न ही संगीत-सम्मेलन हो रहा था—झंडाभिवादन की रस्म अदा हो रही थी। कुछ महिलायें गा रही थीं—

विश्व विजयी तिरंगा प्यारा। झंडा ऊँचा रहे हमारा॥

इस झंडे के नीचे निर्भय, घर से लें आजादी निश्चय।
बोलो माता दादी की जय, भारत प्यारा देश हमारा॥

आओ प्यारी सखियां आओ, हिन्दूकोड पर बलि-बलि जाओ।
एक साथ रोओ चिल्लाओ, गुस्सा ठण्डा रहे हमारा॥

नैन-युद्ध के भीषण रण में, लखकर जोश बढ़े क्षण-क्षण में।
कांपें कायर देखकर मन में, प्रण होवे तब पूर्ण हमारा।

झंडा गीत और भी सुनता लेकिन कचहरी का एक काम निकल आया। डी० एम० के कोर्ट में जाना था।

डी० एम० साहब एक राजपूत थे और पत्नी लाये थे यूरोप से कोई एंग्लोइण्डियन इसलिए उनके वही ठाठ थे, वही वेष था और वही भाषा थी और उसी तरह के रख रखे थे उन्होंने अपने महिला अर्दली।

पहले तो हम अर्दली को ही मजिस्ट्रेट समझ बैठे। वह तो यदि हम कुछ देर यह न सोचते कि इनसे हाथ मिलाया जाय या और किसी नये ढंग की नमस्कार की जाय तो पता भी न चलता कि यह महाशय अर्दली हैं।

इनका कोर्ट क्या था अच्छा खासा कन्या वैदिक विद्यालय था। हमें चुप खड़े देखकर अर्दली बोले—"क्या काम है?"

"जी यदि किसी टाइपिस्ट की आवश्यकता हो तो अपनी सेवायें देने को तैयार हूँ।"

"पुरुष तो नहीं रखे जाते!"

"पुरुष शासन में तो यह नौकरी औरतों की धरोहर ही समझ कर उन्हें दी जाती थी। खैर फिर और कोई काम ही दिलाइये।"

"हाँ, यदि साहब चाहें तो उन्हे एक बबर्ची की आवश्यकता है।"

"वेतन क्या मिलेगा।"

"शायद २०) या २५)रु०।"

"इतने में गुजारा कैसे होगा, आपको यहाँ क्या मिलता है?"

"५५) रु० और ३) रु० साल तरक्की।"

"फिर गुजारा कैसे चलता है?"

"ऊपर की आमदनी से बिन्दी पौडर के पैसे निकल आते हैं और आमदनी आजकल धरी ही कहाँ है मुवक्किल को तो वकील ही निचोड़ लेते हैं, हमें क्या दे, खाली दाँत दिखा जाता है।"

"आपकी शादी हो गई?"

"नहीं !"

"क्यों ?"

"अम्मा चाहती हैं, सुशील, गृहकार्य में दक्ष और पड़ा लिखा लड़का।"

"अच्छा नमस्ते।"

"चल दिये। आप तो नौकरी चाहते थे। साहबा से पूछ लूँ।"

"लखनऊ जा रहा हूँ आज एक काम से, वहाँ से आकर मिलूँगा।"

लखनऊ जाने के लिए जब मैं गाड़ी पकड़ने स्टेशन पर भागा तब बड़ी दिक्कत पड़ी। गाजियाबाद से लखनऊ का टिकट लेने के लिए और वह भी सैकिन्ड का १००) का नोट मैंने दिया। क्लर्क आयीं थीं एक रोहतक के जाट बाबू की जाटनी, हिसाव के लिए परेशान, कितनी बिस्सी वापिस देनी हैं, वह कई वार कई जगह खरीज की ढेरियाँ लगा चुकी थीं; जब इतने पर भी हिसाब न लगा तो अपनी एक और बहनजी को बुला लायीं। अभिप्राय यह है कि २-३ बहिनजियों ने मिलकर मुझे १≡)।। ज्यादा दिलाये।

गाड़ी में जब चढने लगा तो वहां भी मुसीबत, भस्मासुर की दो बहनें अपने बराबर की लाठियाँ लिए आ डटीं।

"दीखना नहीं" एक बोली।

"फूट गयी हैं माथे की" दूसरी ने पहली का समर्थन किया।

"जी, माथे की दोनों ठीक हैं, केवल अब मैंने घूर-घर कर देखना छोड़ दिया है।

"मां-बहिन, नहीं हैं तेरे ?"

"जी, घरवाली तक नहीं।"

"मर गयी न ?"

"भग गयी"

"थाने में रिपोर्ट नहीं कराई ?"

"थानेदार भी आजकल उस हल्के में वही बन गई है।"

"जाओ, आगे जाकर बैठो, उस डब्बे में बैठना जहाँ ऊपर आदमी का फोटू लगा हो, वरना चालान कर दिया जायेगा। "समझे!"

"जी समझ गया।"

मै पुरुषों वाले डिब्बे में जाकर बैठ गया। गाड़ी खड़ी रही आध घंटा लेट हो गई। यात्रियों में खलबली मच गई कि गाड़ी क्यों नहीं जा रही है।

पूछने पर पता चला कि सिगनल देने वाला पहले एक लड़का था। अब उसकी जो घरवाली आई है वह गर्भवती है और कमजोर है। सिगनल देने का हत्था खीचने के कारण उसके पेट में दर्द हो गया और चक्कर आ गया।

खैर, २-३ औरतों ने मिलकर गाड़ी को डाउन दिया, गाड़ी चली, चलते ही एक चलती-पुर्जी टी० टी० गाड़ी में आ धमकी।

"टिकिट लाओ मिस्टर कहाँ जाना है?"

"मैरिज ब्यूरो के आफिस में!"

"सो तो शक्ल ही बता रही है।"

"धन्यवाद आपकी पहचान अच्छी है।"

"क्या शादी नहीं हुई तुम्हारी?"

"हुई तो थी, मर गई।"

"यह टिकट तो तुम्हारा सैकिण्ड का है और बैठे हो फर्स्ट में?"

"जी, मैं तो गद्देदार थर्ड समझ कर बैठ गया था।"

"थर्ड में गद्दे लगते हैं कहीं, अजीब जानवर हो।"

"समझा था कि शायद आपके शासन ने रेलों में भी सुधार कर दिया हो?"

"ठीक एक दिन में ही सुधार के स्वप्न आने लगे और तुम लोगों को युग बीत गये बिना सुधार के ही।"

"नीचे खड़ा हो जाऊँगा।"

"फिर भी चार्ज देना होगा, १२।।।≡) आने और खोलो।"

"मैंने रेजगारी की थैली उनके आगे रखदी—गिन लो।"

"क्या खरबूजे बेचकर लाये हो ?"

"जी घरवाली की गुल्लक हाथ लग गई थी।"

"नोट दो।"

"क्या इस राज्य में इकन्नी-दुअन्नी नहीं चलतीं ?"

"चलती तो हैं पर मेरे पास बोझ अधिक हो जायगा।"

"मैं भी बोझ ही हल्का कर रहा हूँ। पर्स में भर लो।"

किसी तरह इससे भी पीछा छूटा और लखनऊ आया। स्टेशन से निकलते ही देखा ट्रैफिक बन्द।

अपने कोचवान से पूछा, ट्रैफिक क्यों रुक रही हैं, तो उसने बताया कि प्रधान मंत्राणी आज अपनी मंत्राणियों के साथ बट पूजन उत्सव में भाग लेने गई हैं। वह वृक्ष जहाँ उत्सव है शहर से २ मील की दूरी पर है इसलिये उनके लौटने तक ट्रैफिक रोक दिया गया है।

ठीक पौन बजे ट्रैफिक खुला, धर्मशाला में सामान पटक कचहरी गया, एक मुकदमे की मिसिल देखनी थी। यहाँ भी वही हाल नजर आया, वहाँ पता चला कि मजिस्ट्रेट प्रभाकर की परीक्षा देने गये हैं।

हारा-थका धर्मशाला में वापस आया तो वहाँ से सामान गायब। कुछ लोगों ने सलाह दी कि रिपोर्ट करो; रिपोर्ट करने थाने गया। रिपोर्ट लिखाई, वहां मुहर्रिर ने अटपटे प्रश्न किये—

"तुम्हारा क्या नाम है ?"

"जी, जानकी।"

"आदमी हो या औरत ?"

"इस समय तो दोनों के बीच में ही समझ लीजिये।"

"बाप का नाम ?"

"ना मालूम।"

"अनाथालय का पता बोलो।"

"वहां पर तो आजकल विधवा-आश्रम खुल गया।"

"सामान में क्या था ?"

"दो जोड़ी बुन्दे, एक जोड़ी कंगन, लौकिट, दस्तबन्द, दो अदद रामनवमी ६ तोले की और एक फूलहार तथा एक ब्रेसलेट और ७ अँगूठियाँ, दो पतलून, चार कोट, तीन कमीज, दो धोती और १२००) ।"

"शादी का सामान था क्या ?"

"हां !"

"दरोगाजी को आ जाने दो, बाहर बैठ जाओ।"

दो घण्टे बाद दरोगाजी एक जनाना अस्पताल से लौटकर आये। कुछ देर बाद उन्होंने बुलाया और प्रश्नों की झड़ी लगादी। गाड़ी में कौन साथ था ? धर्मशाला में कौन साथ था। बाद में उन्होंने कमला नाम के सिपाही को बुलाया और धर्मशाला में तहकीकात की आज्ञा दी, सामान मिल गया। जिस अलमारी में रख गया था उसे मैं भूल गया था।

सिपाही को बख्शीश के लिए पांच रुपये दिये और एक होस्टल में चाय पिलाई। चाय पिलाते समय गाड़ी के टी० टी० भी दिखाई दिये।

"आप तो कहते थे मेरी घरवाली भाग गई, यह नहीं बताया पुलिस में नौकर हैं।"

"जी, भूल गया था।"

उसके जाने के बाद सिपाही ने फिर पूछा—"आप किस महकमे में थे ?"

"सप्लाई डिपार्टमेण्ट में।"

"अब आपकी बीबी होगी ?"

"बीबी नहीं है।"

"दूसरों को भी तो एवजी पर भेजने का नियम है ?"

"हां, मैंने दो महीने की मुहलत ले रखी है, यदि कोई मिल गई या

शादी हो गई तो वैसा ही करूँगा, नहीं तो इस्तीफा है ही।"

"आप यहाँ कब तक रहोगे ?"

"साढ़े तीन दिन।"

शाम को दरोगाजी ने फिर बुलाया और उन्होंने भी वही ऊपर वाली बात पूछी और मैंने भी वही उत्तर दिया।

दरोगाजी ने शर्माते हुए कहा कि इस विभाग में मेरा भी जी कतई नही लगता है और जिस थानेदार की बदली में उसकी भावी वधू बनकर मै आई थी वह परमपद को प्राप्त हो गये इसलिए नौकरी भी छूट सकती है। यदि आप कृपाकर अपने वाले स्थान……

"अच्छी बात है।"

"तो मैं पिताजी से राय ले लूँ ?"

"ले लीजिए।"

"पिताजी से पूछ लिया गया और उन्होंने थाना छोड़ दिया। उन्हें मैंने सप्लाई विभाग में अपनी जगह भिजवा दिया। तनख्वाह का मनीआर्डर हर महीने घर भेजने की शपथ मैंने पहले ही लिखा ली थी।

उनको लखनऊ से भेज, मैं फिर अपने मुकदमे के कागजात लेने पहुँचा। मजिस्ट्रेट आज आये थे, उनके ऊपर अपने स्थान पर चढ़ने के लिए रबड़ की सीढ़ी स्प्रिंगदार छोटी-सी लगाई गई थी ताकि ऊंचे-नीचे में पैर न पड़ जाय। कागजात मिल गये।

मिसिल से पता चला कि मेरे मित्र गिरीश ने एक महिला अधिकारी को साली की गाली दी थी और अनुचितरूप से लम्बा साँस खींचा था, जब कि हरीश का कहना था कि उक्त अधिकारी ने मुझ से शादी करने को कहा था और कई प्रेमपत्रों की नकल अदालत में पेश की थी।

अगले दिन मुकदमे की तारीख थी। फिर अदालत गया, अदालत में वादी और प्रतिवादी दोनों उपस्थित थे। मुकदमा आरम्भ हो चुका था,

गिरीश से बहस समाप्त हो चुकी थी, उसने अपराध को मानने से इन्कार कर दिया था। अब वादी इन्दुमती से बहस चल रही थी।

"तुम्हारा नाम ?"

"इन्दुमती।"

"पिता का नाम ?"

"कैलाशकुमार सूद।"

"गिरीश को जानती हो ?"

"हां।"

"कैसे ?"

"कालिज से।"

"तुम से छेड़खानी कब की थी ?"

"दिन तो याद नहीं, गाड़ी में।"

"तुम मर्दों के डिब्बे में क्यों बैठी थीं ?"

"गाड़ी में भीड़ अधिक थी।"

"क्या कोई प्रेम-पत्र तुमने लिखा है अभियुक्त को कभी ?"

"याद नहीं।"

"इनको पहिचानती हो ?"

"हाँ, यह पहले लिखे थे, जब हम दोनों की शादी करीब-करीब पक्की हो गई थी।"

बहस के बाद फैसला सुना दिया गया, गिरीश बरी कर दिया गया।

मैं घर लौट आया, आज दूसरी तारीख थी। महीना बीत गया, मनीआर्डर की प्रतीक्षा में था कि अचानक किसी ने आवाज लगाई।

मैंने सोचा कि मनीआर्डर वाला आया है, ऊपर से चद्दर फैंक कर भागा तब आँख खुल चुकी थीं और नीचे किराया लेनेवाले मुनीमजी दाँत दिखा रहे थे। सड़क पर चुनावों के नारे लगाता एक जलूस जा रहा था।

गंगाजल की एक बूँद

भारतवर्ष के नगरों की सड़कों पर लेटे लाहौर के शरणार्थियोंको, और पाकिस्तान के लिये रात दिन टर्र-टर्र करके पाकिस्तान बनवा कर खुद बरेली के बाजार में अमरूद बेचते हुए लीगियों को जिस तरह पाकिस्तान की जन्म-तिथि आज सविस्तार याद है, ठीक उसी तरह अपने राम को भी अपने ब्राह्मण से एकदम बिना हजामत बनवाये और गुरू का आशीर्वाद प्राप्त किये ही भंगी बन जाने की तारीख याद है और शायद जिन्दगी भर रहेगी भी।

कसम करीम की अगर घर में खुशकिस्मती से उस दिन एकाध चूल्लू गंगाजल न होता या उस कबाड़ी से खरीदी हुई बोतल पर घर के किसी चूहे की कृपा हो जाती जिसमें गंगाजल भरा था, तो गणेशजी के वाहन तो सशरीर स्वर्ग के किसी कमरे में बिना "अलाट" कराये ही दाखिल हो जाते और अपने राम को अपने उस मकान को छोड़कर भी गंगा की ओर 'क्विक-मार्च' करना पड़ता।

२ जून सन् १९४९ को ठीक ५ बजे मैं भंगी बना था और लगभग ८ बजे फिर ब्राह्मण बन गया था। मुझे अच्छी तरह याद है कि इस बीच में उस दिन और कोई चालू जाति नहीं बदली थी।

हां, तो उस दिन शहर के चक्कर को निकला था और टक्कर खाते-खाते अखबार में छपने लायक कोई भी समाचार हाथ न लगा था। उस दिन न तो किसी दूकान में चोर घसे और न ही किसी बन्दर तक की

"ऐक्सीडेंट" से मृत्यु हुई। न ही कोई शहर का लीडर परमेश्वर के घर गया और न ही कोई रिक्शा ताँगे पर चढ़ा और न कोई ताँगा किसी मोटर से भिड़ा।

कहने का मतलब यह है कि उस दिन खबरों के बाजार में मुकम्मल हड़ताल थी। भूखा प्यासा जब टाउन हाल के सामने आया तो वहाँ पर कुर्सियों और बेंचों से सजे समूह को देखकर जरा जान में जान आई। यही सोचा कि यहाँ कुछ दाल में काला है या गड़बड़ झाला है। जरूर यहाँ कोई तकरीर वाला लीडर आने वाला है या कुछ दिमाग़दार आदमियों की "रेस" होने वाली है। यानी कुछ नकुछ होगा जरूर और होगा तो छपेगा भी जरूर।

बस, इसी जरूर और शरूर के चक्कर में हम बेकसूर भी एक कुर्सी पर जा धरे गये। कुछ सूरतें पहचानी हुई थीं और कुछ बेपहचानी थीं। पहचानी और बेपहचानियों के उस सम्मेलन में अभी तक अपने राम को यह पता नहीं चला था कि यहां कौनसी कला का 'रिहर्सल' होगा।

किस 'वाद' को दाद दी जायगी या किस लीडर का इतिहास सुनाया जायगा। क्योंकि उस मजमे में शहर की सभी पार्टियों के अखाड़े वालों से लेकर बोर्ड के मेहतरों तथा सरकारी अफसरों तक का मजमा मौजूद था। इसीलिए उसमें कुछ पता नहीं लग रहा था। लगभग सभी खद्दरधारी और गांधी टोपी वाले थे यह बात दूसरी है कि कोई मिलों के कपड़ों को सिलवाये हुए थे तो कोई 'अंसारी मार्का' में ही लिपटे हुए थे। बहुत से नाक वाले नेताओं के पेट में सुना है उस दिन दर्द हो गया था और कोई नीबू निचोड़ उस दिन किसी आवश्यक कार्य की ओट में बाहर खिसक गये थे, किसी ने अपने मातहत के जरिये ही उस जल्से की शोभा बढ़ानी काफी समझी थी।

खैर, साहब मेजों के आगे दोनों में कटे हुए कलमी आम और उन्हें हजम करने के चूरन के बजाय 'लेमनवेड' क्या नाम उनका सोडे की बोतलों का—आई।

पूर्ण तृप्ति के बाद जब अपने राम अपने खास घर आये और टट्टी जाने के लिये एक लोटा उठा कर पानी की टंकी में डाला तो अपनी खास घरवाली ऐसे ही गरज उठीं जैसे किसी ठेलेवाले को देखकर ट्रैफिक का सिपाही। ठहरो-ठहरो, यह क्या कर दिया तुमने, सारा पानी ही बेकार गया और इस लोटे को अब आंच में निक-लना पड़ेगा, इस पानी की टंकी को भी आँच में फूंकना पड़ेगा।

मैंने हंसकर पूछा—पीतल भस्म के लिये तो यह लोटा ही बहुत है। टंकी कीं भस्म करा कर क्या यह सारे भारतवर्ष में बटवानी है और आखिर पीतल भस्म की जरूरत क्या आ पड़ी! फिर क्या था पैट्रोल में पतंगा पड़ गया। त्यौरी बिल्कुल बदल गई-माथे में देहाती बैला गाड़ियों से चलने वाली 'लीक' डाल कर फिर उफनी।

"भंगियों का खाकर आये हो मुझे पता नही है क्या? मुझे क्या पता था तुम इस तरह भंगी-संगी बनते फिरते हो।"

अब समझा कुछ-कुछ कि टाउनहाल में हुआ भोज, भंगी भोज था और नगर के नारी जाति के चलते-फिरते टेलीफूनों ने यह समाचार कभी का विस्तारित कर दिया था।

मैंने कहा—'बस सोडे की एक बोतल पी है!'

उत्तर मिला—'वह क्या उनका न था!'

मैंने फिर हिम्मत बाँधी और बताया कि कसम तुम्हारे सारे छोटे बड़े देवताओं की, वह बोतलें न तो किसी भंगी सोडा वाटर फैक्टरी की थीं और न ही उनकी किसी दुकान से आई थीं।

'बस-बस बकवास बन्द करो' के पंजाब सुरक्षा कानून के भी चचा 'नारी-धर्म सुरक्षा कानून' की कोई सी धारा लगा कर मुकदमे में सफाई-पक्ष की गवाही समाप्त कर दी गई।

मेरा आगे भौंकना बेकार था। समझाने की गुंजाइश खत्म हो चुकी थी और दलीलों का दिवाला निकल चुका था। अब तो सिवाय शरीफ

नजरबन्द की तरह से रहने के और कुछ कहना सुनना करके 'आ बैल मुझे मार' कहावत को दुहराने से भी कोई लाभ नहीं था।

लिहाजा बनारसी विद्वानों की गम्भीर मुद्रा में व्यवस्था दी गई कि पहले हाथ मुँह धोकर बोतल से गंगाजल निकाल कर मुँह में डाल लूँ और फिर कुछ करूँ। मैंने कहा कि पूरा ही स्नान क्यों न करलूँ। ऐसा न हो कि फिर कहीं से भंगी का भंगी ही बना रह जाऊँ। लेकिन मुझे जुकाम होने की वजह से ही असल में न्हाने की सजा में तब्दीली हुई थी, यह पता बाद में चला।

अपना गया हुआ धर्म वापस आ गया और उसे रात को सिरहाने धर कर सोये।

अब उन नेताओं की कथा सुनिये जो लीडरी की झोंक में आकर भोज की बोतलों और आमों से आ लगे थे।

एक साहब के यहाँ नौबत यहाँ तक आई कि बिस्तरे बंध गये। बने बनाये खाने को स्वामी भक्त जानवरों अर्थात् कुत्तों को तकसीम कर दिया गया और दूसरे एक लीडर की तो और भी दुर्दशा हुई।

शहर के आफिसरों के घरों का कुछ पता इसलिए नहीं चला कि महिला टेलीफोनों का सिलसिला वहां तक अभी नहीं है।

भाग्य से उस दिन शाम को पेट के दर्द वाले भी टकर गये और जरूरी काम वाले भी। न किसी के दर्द था और न कोई कहीं गया था।

एक बार की घटना उसी समय आंखों के आगे घूम गई। अछूतों के समुदाय को स्वर्गीय मालवीयजी ने एक गंगाजल से गीले अंगोछे को घुमाकर शुद्ध कर अपने अछूतोद्धार का एक अनुकरणीय उदाहरण पेश किया था। यदि हमारे धार्मिक नेताओं की दृष्टि में गंगाजल का इतना महात्म्य है तो क्यों उद्धारक नेता उनका अनुकरण नहीं करते।

इसके दो ही अर्थ हैं कि या तो उनके दाँत हाथी के दांत हैं अथवा वह मालवीय नियम के विरुद्ध हैं।

समझ में नहीं आता कि जब उनका सिक्का, चाहे वह कागज की शकल में हो या धातु की हमें ग्राह्य है और उनके छुए अन्न से हम उदर-पूर्ति तक कर सकते है तब फिर क्यों उनसे इतना बचते हैं।

आज हमारी इस छूआछूत का भूत बनकर ही पाकिस्तान हमारे सामने है। सिखस्तान की माँग पेश है। क्या अछूतस्थान का सवाल सामने नहीं आ सकता। निश्चय ही यदि इस पृथकतावाद को हमने जारी रखा तो हिन्दू-धर्म एक इतिहास की वस्तु रह जायगा और देश, उसका तो कहना ही क्या ? इसलिए मेरी जनता और विशेषकर जन-नेताओं से अपील है कि वह सब जागे दिन निकल चुका है । समय के साथ चलें और अछूत समस्या का अन्त सब से पहले करें। मैंने जब अपना मुँह ऊपर उठाया तो मेरे भाषण समाप्ति से पहिले ही नेता लोग खिसक चुके थे ।

इत्तिफाक की बात

एक प्रचलित कहावत है कि अमुक व्यक्ति का बिल्ली के भाग्य से छींका टूट गया। इसका मतलब यह हुआ कि इत्तिफाक से कुछ का कुछ हो गया। बात ठीक ही है कि किसी आदमी के भाग्य में 'इत्तिफाक' नाम की वस्तु का जरा सा भी अंश कही छिपा हुआ है तो उसका घर-बाहर क्या सब कुछ बदल सकता है।

जो कुछ मैं लिख रहा हूँ सच मानिये यह भी इत्तिफाक की बात है, वरना महीनों हो जाते हैं और कलम-दवात के दर्शन तक करने को जी नहीं चाहता। आज अचानक ही इत्तिफाक से दिमाग के दालान में कहीं से इत्तिफाक के तन्तु अ घुसे और इत्तिफाक से ही उस दिन कलम-कागज भी फोकट का मिल गया तो भला फिर हमें लिखने में क्या ऐतराज हो सकता थां जब कि इत्तिफाक से हाथ भी उस दिन कुछ लिखने के लिए तैयार थे।

इत्तिफाक से उस दिन सारी बीती पुरानी बातें भी ठीक उसी तरह याद आ जा रही थीं जिस तरह कि माघ-पूष की ठंडी काली रातों में किसी मक्कार या आपकी शिष्ट भापा में किसी बेवफा प्रेमिका की गालियां याद आती हैं।

एक बात उस दिन सबसे अच्छी यह हुई कि जब अपने राम सोकर उठे तो सामने प्रथम नजर किसी कलमुखी या चन्द्रमुखी पर पड़ने के

बजाय सीधे शीशे पर ही पड़ी इसीलिए हमारा आज का दिन प्रसन्नता पूर्वक चुनाव में जीते हुए स्वतन्त्र उम्मीदवार की तरह ही कटा।

हाँ, तो आपको अपनी एक इत्तिफाक की बात सुना रहा था। और जब सुनाने बैठा ही हूँ तो लगे हाथ आपको यह भी सुना दूँ कि इत्तिफाक से अभी तक अपना नाम शहर की विधुर लिस्ट में दर्ज है क्योंकि इत्तिफाक से अभी तक किसी भी पत्नी दाता की पैनी दृष्टि अपने राम पर नहीं पड़ी है।

अपने लिए मैंने विधुर शब्द का प्रयोग इसलिए किया कि इत्तिफाक से मैं जवान बनने से पहले बचपन में ही विधुर हो चुका हूँ। अपने समझदार माता-पिता ने हमारी ६ वर्ष की आयु में ही एक साढ़े तीन वर्ष की गुड्डी से ही हमारा विवाह कर दिया था। एक दिन गुड्डी रानी गुड़िया से खेलते-खेलते पानी के टब में डुबकी लगा गयीं और अपने इस गुड्डे को संसार के खड्डे में पड़ा छोड़ कर स्वर्ग सिधार गईं। तभी से अपने राम का नाम विधुर लिस्ट में और गुड्डी का नाम म्यूनिस्पिल बोर्ड के मृतकों के रजिस्टर में दर्ज हो गया।

इत्तिफाक से उन दिनों खाली ही था। कालिज की छुट्टियाँ थीं। और यह आप जानते ही हैं कि हमारे देश में राँड और रंडुओं को एक-एक कदम फूँक-फूँक कर इस दुनियाँ में रखना पड़ता है। हां, तो उन्हीं दिनों इत्तिफाक से अपने एक जिगरी लँगोटिया यार रामकिशोर का पत्र मिला। चिट्ठी में लिखा था कि परसों इत्तिफाक से एक जगह भाषण सुनाकर लौट रहा था कि अपनी बुढ़िया मोटर सड़क पर खड़े एक पेड़ के प्रेमपाश में आबद्ध हो गयी और शरीफ संरक्षकों की तरह से उसका दंड भुगतना पड़ा हमें। गनीमत है कि इत्तिफाक से जान बच गयी। घर पर मैं अकेला ही हूँ तुम्हारी भाभी आज कल विदुषी बनने की परीक्षा देने गई हुई हैं अतः आप फौरन चले आओ।

अपनी राम कथा सुनाने से पहले लीजिये कुछ रामकिशोर की

बाबत आपको बता दूँ । यह मेरे कालिज के जीवन का वह साथी था जो दो चार वर्ष से पहले किसी क्लास का पीछा ही नहीं छोड़ता था और अन्त में एक दिन कालिज की दीवारों पर अपने कलम दवात फेंक कर पढ़ाई-लिखाई से सन्यास ले घर आ गया और घर आकर राजनीति की पाठशाला में भर्ती होकर पूरा नेता बन गया ।

इत्तिफाक से बहू तो उसे पौने दो आँख वाली मिली थी परन्तु पल्ले में बांधकर नकद २॥ लाख लाई थी । इसीलिये रामकिशोर को उतना ही पति मानती थी जितना कि सामन्ती युग में कृषक जनता किसी जमींदार के कारिन्दे को अपना मालिक या प्रगतिशील कालिज कन्या प्रेम विवाह के पाँच सप्ताह बाद अपने पति को पति मानती है । अतः रामकिशोर की दो आँखों पर सदा पौने दो आँखें शासन किया करती थीं । छोड़ मां-बाप रामकिशोर के भी काफी धन गये थे । नौकरी की उसे चिन्ता थी ही नहीं ।

चिट्ठी पढ़ते ही कुछ मित्र-प्रेम भी ऐसा उमड़ा कि बस कुछ न पूछिये, दो-तीन बार रुमाल गीला करके आँखों से लगाया कि तब कहीं जाकर प्रेम का उबाल शान्त हुआ । उबाल शान्त होने पर हम उठे। अपनी लट्-पट् थैले में भरी और दस-दस की एक गड्डी नोटों की जेब के हवाले कर स्टेशन की राह ली ।

स्टेशन का हाल न पूछिए । बुकिंग क्लास ऐसा लग रहा था कि मानो एम्प्लायमेंट एक्सचेञ्ज का दफ़्तर । राम-राम करके कहीं अपना हाथ टिकिट दिलाऊ मोरी के अन्दर घुसा ।

टिकिट लेकर जब प्लेट फार्म पर आये तो आँखें खुली की खुली रह गयीं । सिगनल प्लेटफार्म वासियों को प्रणाम कर रहा था । गार्ड महोदय की हरी झंडियाँ सर पर उड़ने के लिये तैयार हो रही थीं और ड्राइवर महोदय बड़े प्रेम से एंजिन वाले कमरे से ही गार्ड को कुछ ऐसे प्रेम से घूर रहे थे जैसे किसी नवविवाहिता नवयुवती को ललचाई हुई

नजर से कोई विधवा या मिठाई के थाल को कोई भूखा अथवा पैसे देने वाले ताऊजी को कोई बच्चा ।

उनकी इस घूरा-घारी का कारण तो अपनी समझ में यही आया कि निश्चय ही आज इन दोनों को घर या कही जाने की जल्दी है और इन दोनों ने दिन में ही यह सांठ-गांठ कर ली है । या हो सकता है कि यह हमारी यात्रा से ही कुछ जलते हों और हमें देखते ही हमारे बारे में इशारेबाजी कर रहे हों ।

कुछ न कुछ बात थी जरूर क्योंकि फिर तभी ड्राइवर ने गार्ड को घूरा और गार्ड ने शायद हाँ की जो हमें सुनाई नहीं दी । परन्तु झंडी से इशारा होते हमने जरूर देखा और यह भी देखा कि गार्ड का इशारा पाते ही ड्राइवर ने गाड़ी चला दी ।

हम उनकी नीयतों को पहले ही ताड़ गये थे और घर से हम आज कसम खाकर आये थे कि हमें जाना आज ही है इसलिए जैसे ही उन्होंने गाड़ी चलाई तैसे ही चलती गाड़ी की ओर अपने राम लपके । और एक डब्बे का डंडा पकड़कर गट्ट से अन्दर हो गए ।

जिस समय गाड़ी प्लेटफार्म को प्रणाम करके बिछी लाइनों के चक्रव्यूह में भटक रही थी, उस समय हमें यह पता चला कि हम आ घुसे कौन से डिब्बे में । कुछ न पूछिये जनवरी के महीने में भी पसीना आ गया । डिब्बा इंटर क्लास का था, खैर ! यह बात तो भुगती जाती परन्तु इत्तिफाक से वह था भी जनाना डिब्बा । जनाना भी यदि खाली होता तब भी कोई बात नहीं थी । टी० टी० रामजी की भी खुशामद कर करा लेते । परन्तु यहाँ मामला ही दूसरा था । डब्बे की अधिकारिणी अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग कर रही थीं ।

इत्तिफाक से इतनी गनीमत हुई कि उन्होंने हमें कोई चोर उचक्का समझकर खतरे की जंजीर की ओर अपने कर कमल न बढ़ाये अपितु एक रौबीली दृष्टि हम पर डालकर अपना मुँह बाद में हमारी ओर से

इस तरह फेर लिया जैसे कोई अफसर नौकरी के उम्मीदवार को देखकर भी न देखने का ढोंग करता है ।

पंडितों की सभा में हरिजन की तरह या गलत इमला दिखाकर जैसे मास्टरजी के सामने चुपचाप सिर झुकाकर विद्यार्थी बैठ जाता है ऐसे ही अपराधी की तरह अपने राम बर्थ के एक कौने में बैठ गये । उनकी तरफ देखने की हिम्मत हमने ज़रा भी इसलिये नहीं की कि कौन जाने कहीं देवीजी ताव में आकर उठकर गाड़ी की जंजीर या हमारे कान ही न खींच दें इसलिये चुप ही रहना भला ।

परन्तु इत्तिफाक से जैसा भयानक हम उन्हें समझ रहे थे वैसी भयानक वह थीं नहीं, और हमारी निगाह बचाकर कनखियों से वह हमें इस तरह घूर रही थी जैसे दफ्तर जाते समय कोई कर्तव्यपरायण पत्नी अपने पति को इसलिये देखती रहती है कि कहीं महाशय चाय-पानी के पैसे चुराकर जेब में डालकर तो नहीं ले जा रहे ।

उनकी यह देखादाखी चल ही रही थी कि चलती गाड़ी में ही कहीं से इत्तिफाक से टी० टी० राम चले आये और हमें देखकर तो इतने रौब और अकड़ में आ गये कि मानों यह रेलवे या इन देवीजी दोनों में से एक के या दोनों के ही मालिक हों । हम यह जानते ही थे कि यह सारी अकड़ केवल हमारे लिए ही है और सोचना हमारा था भी ठीक ही क्योंकि उन्होंने आते ही अकड़कर अपने अधिकार का बार हमारे ऊपर कर दिया ।

"आपको मालूम है यह लेडीज़ कम्पार्टमेंट है ?"

"जी हाँ !"

"तब आप इसमें क्यों चढ़े ?"

"इत्तिफाक की बात !"

"जी हां, और जनाब के ऊपर इत्तिफाक से ही मेरी नजर पड़ गई ।"

"इतिफाक से ट्रेन चलदी और हमारे सामने यही डिब्बा आया !"

हमारे और खाली शब्द पर मैंने जान बूझकर ही किसी अभिप्राय के लिए जोर दिया था और मेरा वह अभिप्राय पूरा हो गया। यानी टी.टी. रामजी ने हम दोनों को पति पत्नी मान लिया। कुछ रुककर आप बोल—

'जरा गौर कीजिये यदि इतिफाक से डब्बे में आपकी पत्नी की बजाय और कोई महिला होती और वह चैन खींच लेती तब आपका क्या हाल होता ?"

"इतिफाक तो इतिफाक ही है सब कुछ हो सकता है। जंजीर भी खिच सकती है, खान भी खिच सकते हैं—सभी कुछ खिचना सम्भव है।"

मेरी बात समाप्त होने से पहले ही युवती बोल उठी।

"आपने मुझे इनकी पत्नी कैसे समझा ?"

मामला बिगड़ता देख अपने राम पहले तो जरा सिटपिटाये फिर कुछ सम्हल कर बोले—

"इतिफाक की बात है यह भी, दूसरे इनकी अक्ल गाड़ी से भी तेज चलती है, यह सब कुछ समझ लेते हैं।" मैंने बात गोल करने की कोशिश की।

"शायद इन्हें कोई ठीक से समझाने वाला मिला नहीं ?" युवती ने तैश में आकर कहा।

"यह बात तो नहीं, सैकड़ों साधुसन्त, उपदेशक, कथावाचक, सभी उपदेश जैसा व्यवसाय करने वाले इनकी गाड़ी में रोज चलते हैं, परन्तु यह लोग उनके सत्संग की बजाय उन्हें तंग करते हैं।"

हम अभी रमणी के क्रोध पर लीपापोती कर ही रहे थे कि पता नही कब टी० टी० राम जी हमारा प्रवचन भी पूरा सुने बिना ही एक-दो-तीन हो गए। उलटी नमाज गले पड़ते देख हमारे टिकट देखने भी भूल गए।

स्टेशन आया। गाड़ी बदलनी थी। जनाने डिब्बे का परित्याग करके हम प्लेट फार्म पर आ चुके थे और टाइम पास करने के लिए व्हीलर के स्टाल पर मासिक पत्रों के रंगीन कवर देख देख जी बहला रहे थे कि इत्तिफाक से टाइम का ध्यान ही न रहा और गाड़ी जाने का फिर टाइम हो गया।

भगवान् जाने आज सारे गार्ड और ड्राइवरों को घर जाने की जल्दी थी अथवा हमारे ही दिमाग के कुछ दो चार कल पुर्जे घिस कर ढीले हो गए थे जो हम बार-बार भूल किए जा रहे थे। क्योंकि गाड़ी का फिर वही हाल हो गया जो पहली वाली गाड़ी का था। गाँव के ठेठ ग्रामीण लाठियाँ ऊपर उठाये इस तरह से खिचखिचाकर गाड़ी में भरे पड़े थे कि मानों आज हर डिब्बे में इन्हें बिना टिकट का सिनेमा दिखाया जा रहा हो।

पहले तो हमने दो चार डिब्बों की ताक-झांक की परन्तु कहीं भी अपने उद्देश्य में सफल नहीं हुए तो हमने अन्त में हनुमानजी का स्मरण करके खिड़की की राह से डिब्बे में प्रवेश किया। गाड़ी चल पड़ी थी और हम आधे-आधे अन्दर बाहर बँटे हुए बैठे थे।

अन्त में कुछ लोगों ने अन्दर आने का उत्साह दिलाया तो गटाक से हम अन्दर दाखिल हो गए और बड़े इतमिनान के साथ एक ग्रामीण बिस्तरबन्द पर टिक गए।

दो तीन मिनट में ही बिस्तर हिला। हिला क्या समझिये करवट लेने लगा, तब हमें अपनी भूल का पता चला कि जहाँ हम बिस्तर समझ कर खड़े हुए हैं वास्तव में वह एक कृषक महाशय हैं जो अपने को ठंड से बचाने के लिए अपने हत्थे-पंजे सिकोड़ कर कछुवे की तरह बंडल सा बन कर अपनी रजाई में आराम कर रहे हैं।

बिस्तर से अपना मुंह खोलते ही हमने बड़ी नम्रता से कहा कि—"माफ—करना चौधरी जी इतिफाक से आपको हम कुछ और ही समझ

गए वरना आप के आराम में हम कभी खलल न डालते ।"

बिस्तर जी बनाम चौधरी जी ने हमें माफ कर दिया । हमने अब दीन भरी दृष्टि सारे यात्रियों पर डालनी शुरू की ।

"आप अब आये हैं ?" एक आवाज आई । आवाज की ओर देखा तो वही इन्टरक्लास वाली थीं ।

"जी ध्यान ही नही रहा गाड़ी चलदी । इतिफाक से डिब्बा हाथ लग ही गया ।"

युवती के बोलने और हमारे जरा नाटकीय ढंग से गाड़ी की बजाय डब्बा कहने से जो प्रभाव यात्रियों पर पड़ना था वह पड़ गया अर्थात् वह यात्री लोग भी उसी भूल का शिकार हो गए जिस भूल के शिकार इन्टरक्लास के डिब्बे में टी. टी. राम जी हुए थे ।

"इधर निकल आइए, एक पैर उधर धर लीजिए, एक हाथ से उसे पकड लीजिए एक साथ कई आवाजें युवती के पास बैठे यात्रियों की आई और युवती के पास से खिसक कर उन्होंने हमारे लिए स्थान सुरक्षित कर दिया ।

हमें भला क्या ऐतराज था । ऐतराज की बात उस वक्त सोचना ऐतराज से ज्यादा खतरनाक काम हो जाता । आवाजों के साथ ही उनके स्काउट मार्का मार्ग के चिन्हों के अनुसार खट से वहीं पहुँच गए जहाँ उन्होंने हमारे लिए जगह बनाई थी ।

दूसरे स्टेशन पर गांव वालों की बारात डिब्बा खाली कर गयी तो युवती ने भी जरा करवट बदली । करवट बदलने का आशय साफ था कि बाबा अब तो डिब्बा सारा ही खाली हो गया अब तो हटकर बैठो । हमने इशारे के मुताबिक काम किया । थोड़ा सा खिसक गए गाड़ी फिर चलदी ।

अबकी वार फिर चलती गाड़ी में एक टी. टी. राम आ धमके । यह पहले वाले तो नहीं थे उनके कोई दूसरे भाई थे । जहां वह पूरे साहबी ठाठ

से थे वहाँ यह ईस्ट इंडिया कम्पनी के मुंशियों के कोई वंशधर थे क्योंकि उसी समय की प्रचलित मुंशियाना टोपी इनके सिर पर टिकी थी और इतिफाक से कलम की जगह पेंसिल कान में खुमी हुई थी। दोनों गाल एक दूसरे का आलिंगन सा करते जान पडते थे। दाँत इन्हें पता नहीं कब के दगा दे गए थे। आते ही इन्होंने भी अपनी ड्यूटी बजाई।

"टिकट दिखाइये ?"

"यह लीजिये।" हमने अपना टिकट दिखा दिया।

"इनका टिकट भी तो लाइये ?"

"यह अपना टिकट आप देंगी।"

"दिखाइये जी अपना टिकट ?" कह कर टी. टी. रामजी ने अपना हाथ भिक्षा-पात्र की तरह मे फैला दिया। मगर दाता का चेहरा फक्क। होगये होश हिरन ! टिकट हो तो दिखायें, लगी जेबें टटोलने इधर-उधर की। जेबों में टिकट तो क्या टिकट के पैसे भी नहीं थे। हमारे दिल में इतिफाक से कुछ ऐसा आया कि चलो आज गाड़ी में ही पुण्य का काम कर लो। कृष्ण बनकर द्रोपदी की लाज रखलो। इसलिए हमने टी. टी. रामजी की तरफ अपना मुंह करके "कहा—इतिफाक की बात ट्रेन छूट रही थी, टिकट लिया ही नहीं जा सका।" यह सुनते ही उन्होंने अपना बढ़ा हुआ हाथ हमारी ओर करके पेंसिल कान की खूटियों से उतार ली, क्योंकि हमारी इस लीपापोती का अर्थ वह भी गलत ही समझ गया। हमें अपने इस शब्द-जाल का जुर्माना ६ रु० देना पड़ा। टी. टी. रसीद काट कर हमें दे गये।

गाड़ी खड़ी थी हमें यह भी ध्यान नही था कि गाड़ी खड़ी है या चल रही है। हमारी तभी तन्द्रा टूटी जब एक भिखारिन पर युवती अपनी झप उतार रही थी। भिखारिन को क्या पता था कि अभी अभी दो मिनट पहले बीबीजी की जान पर क्या बीती है, वह तो दुआयें दिये जा रही थी, "बीबी जोड़ी बने रहे, भगवान बेटा दे।" बीबी जी के क्रोध की

ओर उसका ध्यान था ही नहीं। हमने असलियत समझी दान के लिये दिल खुल हो चुका था चट्ट से एक दुअन्नी बुढ़िया के हाथ पर रख दी। बस फिर कुछ न पूछिये बुढ़िया ने बीबीजी के साथ हमें भी दूध-पूत के आशीर्वाद से लाद दिया।

गाड़ी चल चुकी थी, भिखारिन जा चुकी थी अब युवती ने अपनी गर्दन भिखारिन के न दिखाई देने पर हमारी ओर बढ़ाई।

"इतिफाक से मैं जिस समय स्टेशन पर आई तो गाड़ी का टाइम हो चुका था, सचाई यही है कि मैं टिकट लेती तो गाड़ी चल देती।"

"जी, इतिफाक की बात, है आज हमारी जेब में भी रुपयों की कमी नहीं थी अन्यथा अपनी जेब और पैसों में पुरानी दुश्मनी है।"

देवीजी से यह कहना तो बेकार ही था कि टी. टी. को फिर रुपये क्यों नहीं दिये। इतिफाक से उस दिन दिल ही कुछ ऐसा दरियाद्र हो चला था कि कुछ न पूछिये वरना अपने हाथ से ६ पैसे भी कभी दूसरे के लिये हमने खर्च नहीं किये और यहां ६ रुपये का चांटा हंसी-खुशी खा गये।

"हो सकता है शायद अपने काम जो आपके पैसे आने थे, इसलिए आ गये हों जेब में ?".......युवती मुस्कराई।

"हां, है तो यह इतिफाक की बात ही।"

"आपके दाम किस पते पर भेज दिये जायं ?"

"किसी दिन इतिफाक से फिर गाड़ी में भी तो मिल सकते हैं।"

"आपकी बातों में और आपकी आदत में कुछ दार्शनिकों जैसी झलक है।"

"कमी इतनी है कि मेरे पास शीशा नहीं।"

"इंसान अपने गुणों का मूल्यांकन स्वयं नहीं करता।"

"यह अपने राम को इतिफाक से आज आप ही से पता चला है कि हमारे अन्दर भी कोई गुण नाम की चीज है अन्यथा अभी तक तो हम

अपने अन्दर अवगुणों का कारखाना ही समझते रहे हैं।"

कलकत्ता आ चुका था। उतर कर वह कुल वधू की तरह हमारे पीछे २ चल पड़ीं क्योंकि टी. टी. राम जी का दिया हुआ ६ रुपये वाला गेट पास तो हमारे ही पास था। मांग वह सकती नहीं थी और दिल कहता था कि केवल कुछ मिनट ही उसका महत्व और शेष है। वह मिनट भी पूरे हो गए। गेट आ चुका था। हमने दोनों चीजें गेट कीपर को दे दीं। गेटकीपर के पास से निकल कर जैसे ही हम आगे आये वह आज के एहसान मन्दों के अनुसार गायब हो चुकी थीं। हमने तत्काल जेब से डायरी निकाली और ६ रुपया चन्दा खाते के नाम लिख लिये।

पर्दे का रोग

यूं तो रोग सभी बुरे हैं परन्तु यह रोग इतना बुरा है कि भगवान् मनहूस-से-मनहूस आदमी को भी यह रोग न लगावे । जो आदमी इस रोग में फँसा वह कहीं का न रहा । कोई इलाज नहीं, इस रोग की कोई दवा नहीं, कोई डाक्टर नहीं, कोई इंजैक्शन नहीं, तिस पर भी यह आदमी का जीवन और जवानी तो लेता ही है पर धन से भी हाथ धुलवा देता है ।

ऐसा ही एक बार रोग हमारे जिगरी यार एक रणबाँके राठौर को लगा । इस बीमारी के कीटाणु उसके कालिज जीवन में ही खून के बजाय दिमाग में असर कर गये थे ।

उस समय तो हम किसी तरह उसे वहां से निकाल लाये और उसके नगर राजस्थान में उसे ऊँटों से खेलने को छोड़ आये परन्तु एक महीने बाद ही क्या देखते हैं कि हजरत फिर दिल्ली में हैं ।

कहते हैं कि जब बुरा समय आता हैं तो घंटा बजाकर नहीं आता और चुपचाप चोरों की तरह आकर अपना काम करके चला जाता है ।

इसी तरह एक दिन बिना घंटा बजाये ही बुरा समय आया और उस बुरे समय में बुरा फिल्म दिखाने वह हमें भी अपने साथ दिल्ली के मैजेस्टिक सिनेमा में ले गया ।

जाना पड़ा साहब, पुरानी दोस्ती जो ठहरी और तिस पर भी मुफ्त का तमाशा । चले गये । खेल शुरू हुआ और अपनी आदत के मुताबिक

हम सो गये। हाल खाली पड़ा था, ऐसा लगता था मानो दर्शकों ने आज सिनेमाओं के विरुद्ध हड़ताल कर रखी है और कुछ सिने-भक्त ही, जिन्हे बिना पर्दे के दर्शन किये रोटी हज़म नही होती, आदत से लाचार होकर आये हैं।

हां, तो खेल शुरू हुआ और हमने आंख मींचीं। अपनी आखे उस समय खुली जब खेल खतम और पैसा हजम हो चुका था।

उठकर जरा आँखों को मला और फिर अपने रणबांके राठौर को टटोला तो देखते क्या है हज़रत अब भी पर्दे की ओर मुँह किये ऐसे बैठे हैं, गोया अन्दर से किसी के निकलने की प्रतीक्षा कर रहे हो। पहले तो ऐसा भ्रम हुआ कि कहीं ठंड से इनका शरीर जकड़ कर हार्ट फेल तो नहीं होगया और इनकी बेचारी रूह इन्हें सलाम करके सरपट तो नहीं चली गई। या यह हज़रत राजपूतों के पुराने नशे—अफीम का अंट्टा तो नहीं चढ़ा आये। परन्तु अपने सभी शुभ विचार एक दम अदृश्य हो गए जब उन्होंने हाथ उठाकर जम्हाई ली।

'वह गई ?'

'हाँ कभी की डिब्बे मे बन्द हो गयी !'

'स्वप्न देख रहे थे ?'

'नहीं स्वप्न ही मुझे देख रहा था। घूर-घूर कर देख रहा था।'

'अच्छा घर चल कर बाकी हिस्सा देखना।'

'अगर न जाऊँ तो ?'

'सामने कोतवाली है, स्वप्नसार वहाँ भी बतलाये जाते हैं।'

'तुम मजाक कर रहे हो और यहाँ मेरी जान पर बनी है। मैं यहां से सीधा बम्बई जाऊँगा। चलोगे साथ ?'

'खर्च तुम्हें देना होगा।'

बस हम दोनों फ्रन्टियर मेल से, सामान लेकर चल दिये।

पर्दे का रोग लग चुका था। ऐसे रोगी को समझाना बुझाना

बेकार है, दवादारू इसकी कोई है नहीं अन्त में आत्महत्या या टी० बी० हास्पिटल या पागलखाना—वहीं इन्हें आराम मिलता है।

जब बम्बई को चले तो रास्ते में कोई बुकस्टाल इन्होंने नहीं छोड़ा जहां से एक दो सिनेमा पत्रिकायें न ली हों। बाम्बे सेंट्रल तक हमारे पास दो धड़ी रद्दी इन पत्रिकाओं की हो गई थी। हाँ उसमें से शांति-निजामी के चित्र इन्होंने तराश लिये थे।

स्टेशन से उतर कर एक होटल में डेरा डाला। शाम को 'लानत सिनेटोन' के स्टूडियो अंधेरी में शांति-निजामी की तलाश में चले।

पहले हमने डायरेक्टर को विजीटिंगकार्ड भेजा। कार्ड में लिखा था—

'सुन्दरसिंह राठौर'
राजस्थान राज्य

डायरेक्टर ने एकदम हमें बुलाया। समझा होगा, हो सकता है राठौर साहब भी कहीं के राजप्रमुख या उपराजप्रमुख हों, इसीलिये वह स्वयं कुर्सी छोड़कर दर्वाजे तक आये। मगर दुर्भाग्य से उसी समय एक फोन आया और उसे सुनकर डायरेक्टर का चेहरा एक दम ऊपर से नीचे आ गया। मैंने यही अन्दाज लगाया कि या तो कम्पनी मालिक को आज सुबुद्धि आई है या कोई वितरक इनके किसी चित्र की प्रशंसा में अपना सिर पीट रहा है। अतः फोन रखकर उन्होंने कुछ देर सोचा और फिर गर्दन हम लोगों की ओर घुमायी। कहिये—'कैसे दर्शन दिये।

'दर्शन तो करने आये थे।'

'मेरे ?'

'हाँ आपके और निजामीजी के भी।'

'तो अभी कराये देते हैं। वह अभी जाने ही वाली हैं जरा सी देर में। हमारे नये चित्र—'चरित्र की चिड़िया में भी वही हीरोइन हैं।

'कब तक आप अपनी चरित्र की चिड़िया को उडा सकेंगे।'

'बस अब तो उड़ी ही समझिये, चरित्र तो उड़ गया है. बस चिड़िया उड़नी बाकी है।' यह कहकर वह खिलखिला पड़े।

'आपने बनाया खूब खेल, क्या सुन्दर नाम रक्खा है ?'

'सब आप लोगों की कृपा है ?'

'अच्छा यह तो बताइये क्या चिड़िया सचमुच उड़ सकती है ?' अब सुन्दरसिंह का मुँह खुला।

'क्यों नहीं आजकल राजाओं, नवाबों और सेठों का काम ही और क्या रह गया है ?'

'अगर हम भी इसी इरादे से आये हों तो ?'

'पहले आपको चुग्गे की पोटली दिखानी होगी।'

'चुग्गे की चिन्ता न कीजिये ?'

'तब चिड़िया भी तैयार है।'

डायरेक्टर के चेहरे से अब मनहूसियत दूर हो चुकी थी। बोले -

'आप क्या काम करते हैं ?'

'जागीर की देखभाल।'

'तब मुश्किल है।'

'आसान बताओ ?'

'सिनेमा लगाओ।'

'यानी अलाउद्दीन खिलजी की तरह पद्मिनी का प्रतिबिम्ब शीशे में देखें।'

'नहीं जनाब साक्षात् दर्शन करो।'

'क्योंकर ?'

'चित्र के साथ नृत्यकला के लिये उनका भी कन्ट्राक्ट कर सकते है।' यही राय पक्की रही और उनके नये चित्र 'चरित्र की चिड़िया' का सौदा हो गया।

पांच लाख देकर दिल्ली का एक सिनेमा खरीदा गया।

'चरित्र की चिड़िया' की नजर २० लाख हुए। और उसके बाद दो दिन उनका जिंदा नृत्य कराने के लिए ५० हजार में ठेका हुआ। इस तरह २५॥ लाख की होली के बाद हमारे दोस्त को निजामी के दर्शन हुए।

खेल से आय कुल १२२॥) हुई और जाते समय निजामीजी को ५ हजार का हार और भेंट में मिला।

बाप मर ही चुके थे दोनों हाथों से धन उलीचा जा रहा था। परन्तु रोग फिर भी कम न हुआ और बढता ही गया। रोग बढ़ता गया और अच्छे चित्रों के अभाव में रोजगार घटता गया।

बम्बई और दिल्ली का चक्कर कुँवर साहब लगाते और एकाध अभिनेत्री के नेतृत्व में अपनी जीवन-चर्या चलाते।

कल उनका पत्र मिला है टी० बी० से पीछा छुटाने का प्रयत्न कर रहे है। सिनेमा बिक चुका है और उसे एक नर्तकी ने खरीद लिया है।

आज उन्हें मैंने चिट्ठी लिखी है कि दोस्त पर्दे का रोग लाइलाज है और इसका उपचार सिवाय भगवान के और कहीं नहीं।

पाप की खोज

क्षीर सागर में भगवान विष्णु अपनी शैया पर आराम कर रहे थे, लक्ष्मीजी उनके चरण दबा रही थीं पास ही नारदजी बैठे कुछ सोच रहे थे उनका विचार था कि आज भगवान से किसी विषय पर चुटकी लेने का आनन्द प्राप्त किया जाय।

भगवान ने नारदजी की अभिलाषा को ताड़ कर उन्हें अपनी इच्छा पूर्ति का अवसर दिया। भगवानजी बोले—

"नारदजी आजकल पृथ्वी पर पुरुषों के पाप बहुत बढ़ते जा रहे हैं, इसका मूल कारण क्या है क्योंकि आप वहाँ जाते–आते रहते हैं अतः आप अच्छी तरह इस बारे में परिचित होंगे।"

"महाराज, आप अन्तर्यामी हैं सब कुछ जानते हैं कि पाप का स्रोत स्त्री जाति है, फिर मुझसे कहला कर तो आप मेरा उपहास ही कर रहे हैं।"

नारदजी चोट कर गये। लक्ष्मीजी की गर्दन झुक गई और विष्णु भगवान भी नारदजी के उत्तर से अवाक् रह गये।

"नारदजी, स्त्री पुरुष से कैसे पाप कराती है जब कि बहुत से पाप तो पुरुष उन पर भी करता है!" भगवान बोले।

"भगवान स्त्री जाति की इच्छाएँ इतनी प्रबल होती हैं कि पुरुष को बाधित होकर उनके कारण पाप करने पड़ते हैं। उदाहरण के लिये एक सिनेमा का डायरेक्टर है औरतें अपनी शृंगारिक और नाम की

इच्छापूर्ति के लिये उसके पास जाती हैं। उनकी भूख बढ़ती जाती है और चरित्र भ्रष्ट हो जाती हैं। पापी माना जाता है डायरेक्टर। ऐसे ही एक यदि अनाथालय का मैनेजर है तो उनकी इच्छाओं की पूर्ती के लिये ही मैनेजर पुन: पुन: उनकी शादी करता है—इस धर्म के काम के उपहार के बदले उसे पापी होने का दण्ड आपके यहां से मिलता है।"

नारदजी कहे जा रहे थे, भगवान् सुन रहे थे—

"उस आदमी को जो स्त्रियों की शादियां अच्छी-अच्छी जगह करा देता है, आप कैसे पापी कहेंगे। इसी तरह अन्य अपराध भी हैं, परन्तु उनकी जड़ होती हैं नारियाँ। अर्थात् इंसान का हैवान यदि बनाती हैं तो नारियां ही।"

नारदजी फिर चोट कर गये पर भगवान पी गये। भगवान ने फिर सोच कर नारदजी से पूछा—

"नारदजी स्मरण आता है कि एक बार जब आपका चेहरा बन्दर का हो गया था तो उस समय आपको स्त्री जाति से बड़ी घृणा हो गई थी, कहीं उसी काल का बदला तो नहीं ले रहे।"

"हरे! हरे!, भगवान आप यह क्या कह रहे है, हा यह बात अलग है कि आप शिकारी को शिकार समझें और शिकार को शिकारी। मैं आपसे विपरीत समझूं।"

"तब आप की बात की सच्चाई का आधार क्या हो?"

"महाराज! मेरा अनुभव है, मैं मृत्युलोक में आखों देखी घटनायें सुना सकता हूं। अनेकों।"

"परन्तु नारदजी कभी-कभी आँखों देखी और कानों सुनी घटनायें भी असत्य हो जाती हैं।"

"तब महाराज, आप जैसे चाहें इस बात की सत्यता की जांच कर लें।"

"इस जांच के लिये भी मैं आपकी ही सेवायें लेना चाहता हूं मुनि-

राज ।" भगवान् बोले ।

"भक्त को प्रत्येक आज्ञा शिरोधार्य है, महाराज ।" कह कर नारदजी ने गर्दन झुका ली ।

"नारदजी मैंने पर्याप्त सोच-विचार के बाद एक निर्णय किया है और वह निर्णय यह है कि आपको भूलोक की जानकारी अच्छी है अतः इस प्रश्न की सत्यता का भार आप पर ही छोड़ा जाय ।"

"भगवान् यह आपकी मेरे ऊपर विशेष कृपा है ।" गर्व से नारदजी ने गर्दन उठाई ।

"आपका कहना है कि यदि औरतें सीधी-सच्ची रहें तो पुरुष न उन पर स्वयं अत्याचार कर सकते हैं न उनके लिये अन्य अपराध कर सकते हैं ।"

"हाँ, महाराज !"

"तब मेरी आज्ञा यह है नारदजी, कि आपको ६ मास के लिये एक सुन्दर सुशील नारी बनाकर पृथ्वी पर भेजा जाता है।"

"नारी ! भगवान् !"

"हाँ, नारदजी सुन्दर नारी जो पुरुष को स्वयं अपने या दूसरे के ऊपर अपराध करने का अवसर नहीं देगी तभी पता चलेगा कि पुरुष अपराधी या नारी । तुम्हारे भेजे जाने से एक लाभ यह होगा कि भू-लोक से आप परिचित हैं और वहां अपने प्रश्न की पुष्टि के लिये एक अच्छी नारी का अभिनय भी अच्छा कर सकोगे ।"

नारदजी की गर्दन उठी की उठी ही रह गई । लक्ष्मीजी मुस्कुरा रही थीं। नारद चुप थे । सोच रहे थे कि ऐसा न हो यदि ज्यादा कहा सुना तो और अवधि आगे बढ़ादें या कहदें कि सुशील नारी बनकर तुम्हीं महिलाओं का सुधार करो। तब तो और आफत आयेगी ।

"जो आज्ञा महाराज, कहकर नारदजी तिलमिलाते उठे । चले अपनी खड़ाऊं पहनने, तभी विष्णु भगवान् ने टोका । खड़ाऊं आप नहीं

ले जायेंगे। भू-लोक में वाहनों की कमी नहीं है। हाँ, इतना अवश्य होगा कि जहां आपको जाना होगा उतना ही द्रव्य आप अपनी जिस भी जेब में हाथ डालेंगे—मिल जाया करेगा। यहां से आपको नीचे कल भेज दिया जायगा।

अगले दिन जब नारदजी उठे तो उन्होंने अपने को स्त्री रूप में पाया। एक स्वस्थ सुन्दर स्त्री। आंखें मिची, पलक झपे और जब पलक खुलीं तो महिला रूप-नारदजी बम्बई के विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशन के बाहर खड़े थे।

सिंगल और डबल ट्राम गाड़ियां, ऊँची ऊँची कुर्सियों वाली विक्टोरिया गाड़ियां और रंग बिरंगी मोटर गाड़ियां आ जा रही थीं। स्त्री खड़ी थी। बहुत देर से संसार के रहने वालों के रंग-ढंग देख रही थी।

स्त्री की निगाह सामने के दृश्यों पर थी और स्त्री पर काफी परे से किसी और की निगाह थी।

ताड़ने वाली निगाह को जब यह विश्वास हो गया कि स्त्री वास्तव में अकेली है तो अपनी छाया को आगे लाई। स्त्री के पास—बहुत पास और इस तरह से आकर खड़ी हो गई मानों कोई अपना ही खड़ा हो। छाया बोली—

"कहां जाओगी, बिटिया?"

"..............."

"अरी बावली घर का पता ही भूल गई, कोई बात नहीं जब याद आ जाये तब चली जाना। यह बड़ा शहर है यहां लुच्चे-लफंगे आजकल अच्छी तादाद में हैं, तेरा इस तरह खड़े रहना ठीक नहीं मेरे साथ चल। याद आ जाय तो मुझे बता देना मैं पहुँचा दूँगा।

पुरुष की प्रथम भेंट से ही नारदजी का दिल गद्गद् हो गया। सोचने लगे कि यदि आज भगवान साथ होते तो देखते कि मृत्युलोक का पुरुष कैसा देवता है।

छाया चल दी। स्त्री पीछे-पीछे। छाया ने एक टैक्सी किराये की जो ५-६ मील की नगर-यात्रा के बाद एक चार मंजिल की इमारत के सामने आकर रुकी। इमारत पर लिखा था "दीपचन्द विश्रांति भवन"। दोनों उतर कर एक कमरे में गये। सजा हुआ कमरा था तैल चित्रों से सजा हुआ तैल चित्रों में राजनैतिक नेताओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं, धार्मिक पुरुषों— सभी तरह के चित्रों का चयन किया गया था। एक ओर कुछ कुर्सियाँ और दूसरी ओर २—३ कोच पड़े थे और बीच में मेज थी। एक कोने में ठाकुरजी की मूर्तियाँ और पूजा की सामग्री थी। वहाँ स्त्री को ले जाया गया।

स्त्री रूपधारिणी नारदजी को छोड़कर पंडित दीपचन्द कहीं चले गये। जाते समय नौकर को कुछ हिदायत दे गये।

दीपचन्द के जाने पर नारदजी ने पहले भगवान के चित्र को प्रणाम किया और बाद में मृत्युलोक के नेताओं के टंगे चित्रों पर दृष्टि डाली। नौकर कुछ फल लाकर रख गया उनसे नारद जी ने क्षुधा शांत की।

दूसरे दिन दीपचन्द ने सवेरे से शाम तक नगर के दर्शनीय स्थानों का दर्शन कराया और रात को आठ बजे ताजमहल होटल में ले गये।

होटल में जाकर खाने का आर्डर दिया गया। नारदजी चुपचाप बैठे थे। दीपचन्द की गतिविधि तो देख ही रहे थे वहां के दृश्यों का अवलोकन भी कर रहे थे। सुन्दर-सुन्दर स्त्री पुरुष बैठे थे हंसी-मजाक का बोल-बाला था। वहां पर नारदजी की आँख इसी बात की खोज में थी कि पुरुष स्वयं पाप वृत्ति की ओर बढ़ रहा है अथवा इसकी प्रेरणा उसे नारी से मिलती है।

होटल में नारदजी को अपने समर्थन के उदाहरण मिल रहे थे। वहां पुरुषों से अधिक स्त्रियाँ भ्रष्ट थीं।

दीपचन्द ने स्थान का चुनाव भी कुछ सोच-समझ कर ही किया था। उस स्थान पर जहाँ दीपचन्द बैठे थे दो रईसी ठाठ के आदमी और भी थे। जब से दीपचन्द आये थे उनकी निगाह नारदजी के रूप पर लगी

हुई थी। आंखों ही आँखों में पंडित दीपचन्द से उनकी कुछ बातें हुईं वह उठ कर चले गये और पंडित दीपचन्द घर चले गये।

घर आकर उन्होंने बताया—"बेटा आज दो मेहमान आयेंगे रात को तेरा उनसे परिचय कराऊंगा बड़े विद्वान हैं, त्यागी हैं, धर्मावतार हैं, बड़े धनी हैं, रूपवान हैं।"

नारदजी चुप रहे दीपचन्द कहते रहे।

"बेटी क्या सुन्दर रूप है तेरा बिलकुल चन्द्रमा की कला की तरह। तेरा नाम अब मैंने कला ही रख दिया।"

नारदजी अब भी चुप रहे, मन मसोसकर रह गये कि अच्छे भगवान से विवाद में फंसे, नाम भी नारद से कला हो गया और शरीर हो गया स्त्री का। हे भगवान कहीं 'इला' की घटना हो गयी तो देवलोक में मुंह दिखाने को भी नारद न रहेगा।

दीपचन्द को विश्वास हो गया कि अब कला के साथ ज्यादा जोर जबरदस्ती की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, श्याम और मोहन उसे अपने आप संभाल लेंगे।

नारदजी समझ गये कि अब क्या होने वाला है और दीपचन्द कौन है? अतः अब नारदजी को आगे की फिक्र पड़ी। जैसे ही दीपचन्द बाहर गये वैसे ही नारदजी ने पीछे की खिड़की खोली और पानी के नल के सहारे उतरना शुरू किया।

नारदजी गली में नीचे पहुँच गये और कुछ देर मे सड़क पर आ गए। सड़क पर आकर फिर यह प्रश्न सामने आया कि अब कहाँ चला जाय। कुछ दूर चलते फिर रुक कर सोचने लगते।

आसमान पर बादल थे, बारिश आरम्भ हो गई तो नारदजी को और सिर छिपाने की चिन्ता हुई, चिन्ता करते-करते वह एक बिल्डिंग के छज्जे के नीचे खड़े हो गए। बारिश होती रही। नारदजी कभी सड़क की ओर देखते और कभी आसमान की ओर ताकते परन्तु बारिश

को आज रुकना नहीं था। रात के १२ बज गए। शहर की रोशनी मन्द हो गई।

रोशनी के मन्द होते ही उस बिल्डिंग की चहल-पहल बढ़ गई। लोग यहाँ आने-जाने लगे। हंसी मजाकों के कहकहे लगने लगे, नारदजी चक्कर में पड़े कि यहां क्या है जो अंधेरा होते ही चहल-पहल शुरू हो गई।

पहले तो उन्हे किसी ने देखा नहीं परन्तु कुछ देर बाद अनाथालय के सेवक की निगाह उन पर पड़ गयी और उसने मैनेजर से जाकर कहा।

"आखिर है कौन ?" मैनेजर ने नौकर से पूछा।

"चिड़िया है बाबू, चिड़िया सोने की ?"

"कहीं से उड़कर तो नही आई है ?"

"पर अभी निकले नजर नहीं आते ?"

"फुदकना तो आता होगा ?"

"यह बात दूसरी है आप जाकर देखलो !"

पंडित शिवशंकर बाहर आये जहां नारदजी खड़े थे। पहले बारीकी से जरा इधर उधर देखा और फिर आकर बोले —

"बहिनजी, बारिश तेज हो रही है यदि आप अनुचित न समझें तो कमरे में बैठ जाइयेगा, बारिश रुक जायगी, नौकर पहुंचा आयेगा।"

नारदजी को बात भली लगी और वह शिवशंकर के पीछे-पीछे चल दिये। कई एक कमरों को पार कर शिवशंकर एक कमरे में पहुंचे और बिजली जला कर नारदजी को बिठा दिया। कमरा सजा हुआ तो नहीं, परन्तु साफ था।

बिजली की रोशनी में ही उन्होंने नारदजी के सौन्दर्य को अच्छी तरह से देखा तो खिल उठे। नारदजी से बोले—

"यह अनाथालय भी है और विधवा आश्रम भी। परन्तु इसका

अर्थ यह नहीं कि औरों की सेवा ही न की जाय। हमारा कार्य सेवा करना है चाहे वह विधवाओं या अनाथों की हो या बारिश में भीगतों की हो, सेवा, सेवा है। यह कहकर मैनेजर साहब ने जो नकली दांत दिखाये तो उनमें से एक खिसक कर गिर पड़ा।

नारदजी को हंसी आ गई। यह देख कर नहीं की दांत गिर पड़ा बल्कि यह जानकर कि मनुष्य भगवान बनने की अभिलाषा भी कितनी रखता है। शरीर से वह दाँत नहीं उपजा सका तो उसने मिट्टी के बना डाले।

रमणी को हसते देख शिवशंकरजी भी मुस्कराये और अभी आया बहिनजी कहकर वह बाहर चले गये।

बाहर जाकर उन्होंने नौकर से कहा—"देखो चन्दू किसी को भी यह बात ज्ञात नहीं हो कि अभी यहां कौन आया है। माल अच्छा खरा है, ग्राहक अच्छा मिलेगा और तुम्हें इनाम पूरा मिलेगा। तुम्हारा काम बस यही है कि दो तीन दिन मामला दबा रहे और उस कमरे तक कोई न जा पाये। क्योंकि यहाँ पुलिस वालों सहित सभी तरह के आदमी आते हैं और हमें किसी ऐरे—गैरे को इसे दिखाना नहीं है। हीरा है चन्दू हीरा—खुश हो जाओगे, जरा जौहरी हाथ लगने दो।"

चन्दू ने स्वीकृति सूचक सर हिलाया और बाहर दफ्तर की ओर चला गया वहां पण्डित दीपचन्दजी बैठे मिले। नौकर को देखकर बोले—

"शिवशंकर जी हैं ?"

"हाँ, खाना खाय के आ रहे हैं ?" नौकर ने बात समाप्त कर दी।

शिवशंकरजी आये, दीपचन्द को बैठे देखा तो कुछ मन में खटका हुआ। परन्तु दोनों ही चंट थे। दोनों ही एक दूसरे को जानते थे।

"कहिए महाराज कहाँ से बे-वक्त सवारी आ रही हैं।" शिवशंकर बोले।

"हम लोगों का क्या वक्त, वक्त तो आपका है, चौबीसों घण्टे दुकान चलती है, माल आता है, बिकता है।" दीपचन्द ने दांत दिखाये।

"अच्छा यह बताओ कहां से आ रहे हो खरीद कर या बेच कर।"

"न खरीदकर न बेचकर, बल्कि यूं कहिए कि खोकर।"

"क्या मतलब !"

"चिड़िया उड़ गई ?"

"पर कैंच नहीं की थी !"

"बस यही तो धोखा हुआ ? अब आप ईमानदारी से बताओ कि यहाँ के अड्डे पर तो कबूतर नहीं गिरा ?"

"उड़ा कब था ?"

"कुछ देर पहले ही !"

"तब आपने यहाँ तक उड़ आने की कल्पना कैसे करली ?"

"यूं ही अन्दाज से ? फिर भी ध्यान रखना माल-माल नहीं हीरा है चार लाख का, लाखों में एक।"

"आप कोई गैर तो हैं नहीं, जो आपसे छल किया जाये। अभी स्टेशन वाले सेवक नहीं आये हैं, यदि उनके हाथ लग गई तो खबर दूंगा।"

अच्छा कहकर दीपचन्द मनमसोस कर चले गये। आदमी आते-जाते रहे। कुछ देर बाद एक पुलिस अफसर आये।

"क्यों मैनेजर साहेब क्या हाल है कोई नया माल आया ?"

"आज कल तो सरकार बारिश के दिन हैं, बाहर से कुछ आता नहीं।"

"दीपचन्द की एक चिड़िया गायब हो गई है बड़ी तारीफ कर रहा था। तुम्हारे यहाँ तो नहीं आई।"

"कैसी बातें करते है सरकार, कोई उसके बाप का घर है जो दो

घण्टे में वह दीपचन्द के यहां से सीधी यहां चली आइ ।

"हाँ यही मैंने कहा था कि भला इतनी जल्दी कैसे वहां जा सकती है ।"

'सोचिये तो आप ही ।"

"अरे साला पागल है और फँसा लेगा कोई मरने दो, अच्छा फिर आऊँगा इस वक्त मैं गश्त पर हूँ ।" चल दिये वह भी महोदय ।

शिवशंकर ने सोचा कि इसका यहां रखना ठीक नही, घर रखना ठीक रहेगा यहां इस तरह का आदमी हर वक्त आता है कोई मुसीबत न आ जाये । अतः यही निश्चय करके वह नारदजी को घर ले आये और अपनी पत्नी के सुपुर्द कर दिया ।

दूसरे दिन से शिवशंकर कला के चाचा बने और उनकी पत्नी चाची बनी । दो तीन दिन यूँ ही कट गये । नारदजी को विशेष कष्ट नहीं हुआ भोजन और भजन करना दिन बिताना । चाची को उनके इस धार्मिक कृत्य से कोई आपत्ति नहीं थी, चाचा के पापों की निवृत्ति भतीजी कर रही थी ।

उधर शिवशंकर ने यह दो तीन दिन बेकार नहीं खोये । वह बड़े बड़े नारी पारखियों से मिला परन्तु कीमत सुनकर सब मन्न रह जाते थे । दीपचन्द १० हजार मांगते थे ।

शिवशंकर को यह विश्वास हो गया कि अन्य बाजारों की तरह रूप का बाजार भी मन्दी की ओर है । कीमत सुनकर तो लोग माल का नमूना देखने की हिम्मत भी नहीं करते इसलिये इस माल का नया प्रयोग किया जाय । माल भी अपना और दाम भी खरे ।

अपने उक्त निश्चय को कार्य रूप देने का निश्चय करके वह अपने मित्र संतोषचन्द्र के पास पहुंचे । संतोषचन्द्र बड़े भक्त वृत्ति के मनुष्य माने जाते थे । कई एक अनाथालयों का वह निर्माण और विनाश कर चुके थे और अब उस अपने पिछले कार्य को तिलांजलि देकर उन्होंने नये काम

का श्रीगणेश किया था। पैसा अनाथालयों मे उन्होंने काफी उपजाया था। शिवशंकर कई बार उनके यहां भी नौकरी कर चुके थे। इसी बलबूते पर वह यहाँ आये थे।

संतोषचन्द्र बड़े संतोषी जीव थे। आज भी संतोष की मूर्ति बने अपने स्टुडिओ के एक कमरे में कागज पत्र फैलाये बैठे थे। शिवशंकरजी को देखकर बड़ी प्रसन्नता से मिले।

"क्या-क्या प्लान बन रहे हैं सरकार !" शिवशंकर ने पूछा।

"आपको तो मालूम ही है कि अपनी कम्पनी—'छीरसागर लिमिटेड' अपना धार्मिक चित्र 'देवऋषि' बना रही है। उसके लिए कोई ऐसी लड़की नहीं मिलती जो लक्ष्मी का पार्ट अदा कर सके। नारद का तो मैं स्वयं ही करूंगा ? चाहता हूँ नया चेहरा। कोई बताना यदि आये तो ! बड़ी परेशानी है यदि और कोई न मिला तो भगवान का पार्ट भी मुझे ही सँभालना पड़ेगा।"

"अच्छा देखूँगा। मैं तो आपके पास एक काम के लिये आया था कि मेरी एक भतीती है, सिनेमा लाइन के लिए जिद्द कर रही है, सोचा आपसे अच्छा और कौन मिलेगा अपना, आपकी राय लेने आया हूँ।"

"कल लिवा लाना, तब बताऊँगा।" संतोषचन्द्र भी पक्का घाघ था।"

दूसरे दिन शिवशंकर कला को लेकर वहाँ पहुंचे। परिचय कराया। "बेटी शरमाने की कोई बात नहीं हैं, जैसे मैं तुम्हारा चचा वैसे ही यह भी तुम्हारे चचा हैं। आचार्य हैं नाच गाने के। इनका कहना मानोगी तो दुनियाँ में तुम्हारा नाम अमर हो जायगा।"

कला मौन रही। अब तक शिवशंकर का व्यवहार बुरा नहीं था।

अब वह कला को रोज ले जाने लगे स्टुडियो, और स्टुडियो की मोटर पहुँचा जाती घर। परन्तु दो तीन दिन बाद सन्तोषचन्द्र का सन्तोष कम होना शुरू हुआ और उन्होंने नाच विद्या के लिए शरीर

स्पर्श भी करना शुरू किया। नारदजी ने अब तक भी आपत्ति न की। यह काम भी चलता परन्तु अब नारदजी अपने मत से विचलित हो गये, उसी पुरुष और नारी के। अब तो वह भगवान से रोज अपने छुटकारे की प्रार्थना करते।

देवऋषि फिल्म का रिहर्सल होता। लक्ष्मीजी की भूमिका के योग्य सन्तोषचन्द्र कला को उपयुक्त मानते थे और अपने लिए भी। परन्तु अपने लिये जरा झिझकते थे।

अभी तक वह बाहरी बातों से ही कला को लुभाते। कभी साड़ियों के बंडल लाते। कभी नाम और धन कमाने का लालच देते। कभी अपने मित्रों से मिलाते। शिवशंकर को उन्होंने पंद्रह हजार पहले ही दे दिया सो वह बे फिक्र थे। कला भी अब स्टूडियो में रहती थी।

कला को देखते ही प्रेम की बातें करते, आह भरते, 'सब कुछ तुम्हारा है' के वाक्य रोज दोहराते अन्य अभिनेत्रियों और डायरैक्टरों के उदाहरण देते। मतलब यह है कि एक बुड्ढा प्रेमी जितना कुछ कर सकता है वही सब कुछ यह बुड्ढा कर रहा था।

नारदजी मन में हँसते भी और अपनी अवस्था पर रोते भी परन्तु कर क्या सकते हैं, भगवान की आज्ञा थी।

आज रिहर्सल का वह दिन था जब लक्ष्मीजी भगवान के चरण दबा रही थीं क्षीरसागर में। नारदजी पास बैठे थे। नारदजी कालिज का एक आवारा लड़का मरियल सा बनाया गया था। गाना अच्छा जानता था इसलिए उसे रक्खा गया था वह बैठा था हाथ में उसके सितार था पास खड़ाऊँ रखी थी और एक गद्दे को शय्या का रूप देकर ड्रेस बदल कर सन्तोषचन्द्र भगवान के रूप में बैठे थे। पहले नारदजी से दो चार भजन गवाए गए। नारदजी अपने प्रतिरूप को देखते रहे। बाद में नारदजी यानी कला का अभिनय था लक्ष्मी रूप में उनके पैर दबाते रहने का।

कला से कहा गया। कला बैठ गई। सन्तोषचन्द्र ने पैर फैला दिये अच्छी तरह, क्योंकि उन्होंने आज अपना षड़यन्त्र पूरा रचा था कि जैसे ही कला उनके पैर दबायगी सन्तोषचन्द्र अपने सन्तोष को समाप्त कर देंगे। परन्तु विधना का विधान कौन जाने।

कला ने मन मार कर जीभ काट कर भगवान की प्रार्थना कर जैसे ही हाथ पैर दबाने के लिए उठाये कि बादलों में से एक गरज हुई कमरे की बिजली बुझ गई और कड़क कर कमरे पर पड़ी। सारे लोग अचेत हो गये, छत फट गई नारदजी ने ऊपर देखा तो लक्ष्मी सहित भगवान स्वय खड़े थे। लक्ष्मीजी हँस रही थी—"वाह नारदजी वाह, मेरे अधिकार पर हाथ साफ करने का अभ्यास हो रहा है।" नारदजी भगवान् के पैरों पर गिर गये "प्रभु अब क्षमा करो बहुत हो गया।"

"चलो नारदजी वास्तव में बहुत हो गया, मनुष्य के चरण देवता नहीं दबा सकता।" रही इस पापी की बात सो इसका काल अभी दूर है और दूसरे इसे दण्ड भी तो तुमसे पूछकर ही देना है कि अपराधी यह है या कला। नारदजी की गर्दन झुक गई। सवेरे पत्रों में छपा "स्टुडियो पर बिजली गिरने से कला नामक अभिनेत्री भस्म हो गई और डायरेक्टर संतोषचन्द्र घायल हो गये।"

लल्ला की नीलामी

लाला घसल्लीराम कई दिन से अनमने से रहते थे। बहुत कम खाते और बहुत कम पूजा-पाठ करते। मतलब यह है कि लालाजी की दिनचर्या का प्रत्येक काम घटकर बहुत छोटा हो गया था।

तमाम घर, दुकान के तमाम नौकर-चाकर लालाजी की इसी चौमुखी कमी से बहुत हैरान थे। आज लालाजी को अपनी इस कमी का जीवन बिताते पूरा एक सप्ताह हो गया था।

इस "कमी सप्ताह" का आज गुरुवार था। पाँच कभी के बज चुके थे, दुकान के मुनीम लाला तसल्लीराम को आज ज़रा जल्दी घर जाना था, परन्तु दोपहर को लालाजी का हुक्म आ चुका था कि मुनीम जी जब घर जायें तो पहले बहियें लेकर मुझसे मिल ले। अतः तसल्लीराम इसी उधेड़-बुन में पड़े थे कि कब लाला बुलायें और कब छुट्टी हो और कब जल्दी से घर चलूं।

सवा पाँच बजे तक भी जब मुनीमजी की बुलाहट न हुई तो मुनाम जी ने सोचा शायद लालाजी भूल गये हैं, क्यों न चलकर उन्हें याद दिला दूँ।

मुनीमजी उठे। बहियाँ कन्धे पर रखीं, लालाजी के कमरे तक आये।

कमरे पर आकर मुनीमजी रुके। अन्दर के हालात जानने के लिये लालाजी के भिड़े हुए दर्वाजे को आहिस्ता से जरा-सा खोला और फिर बन्द कर दिया। लालाजी अन्दर मौजूद थे। गद्दी पर आलथी-पालथी मारे, आंखें मींचे और दोनों हाथों को जाँघों पर रखे, बिल्कुल योगीराज की तरह से बैठे थे।

दर्वाजा भेड़ कर तसल्लीराम ने सोचा कि शायद लालाजी संध्या कर रहे हैं या योगाभ्यास कर रहे हैं, क्योंकि ब्लैक समाप्ति के साथ-साथ लालाजी की हंसी-खुशी की भी समाप्ति हो चुकी है और आजकल उनका दिखावा स्वार्थवादी के बजाय परमार्थवादी अधिक है। इसलिये पूजा समाप्ति पर ही चलना ठीक रहेगा। मुनीमजी फिर गद्दी पर आ बैठे।

आधा घंटे बाद मुनीमजी ने फिर चलने की ठहराई। बहियें फिर कन्धे पर रखीं और दर्वाजा फिर जरा-सा आ खोला।

खुली झिर्री में से लाला तसल्लीराम ने फिर लाला घसल्लीराम को झांका। लालाजी अब भी उसी आसन पर उसी ढग से विराजमान थे, नेत्र अब भी बन्द थे, पालथी अब भी लगी हुई थी। हां, पहले और अब में इतना अन्तर अवश्य आ गया था कि लालाजी का एक हाथ पैरों को छोड़कर माथे पर आ गया था। शेष हाल ज्यों का त्यों था। शरीर में और किसी प्रकार की गति नहीं थी।

मुनीमजी के पैरों ने अब की बार भी आगे बढ़ने से इनकार कर दिया और दर्वाजा फिर बन्द कर दिया। बाहर आकर उन्होंने बीड़ी सिलगाई और स्टूल पर बैठकर फिर लालाजी की समाधि-भंग की प्रतीक्षा करने लगे।

बीस मिनट तक प्रतीक्षा मुनीमजी ने फिर की लेकिन लालाजी की समाधि-भंग का कोई चिन्ह जब मुनीमजी को दिखाई न दिया तो मुनीमजी फिर उठे और अब की बार सीधे अन्दर जाने का निश्चय ही करके उठे।

दर्वाजा फिर खोला, झांके। लालाजी अब भी पद्म-आसन लगाये बैठे थे। आंखें अब भी बन्द थीं। अब की बार अन्तर केवल लालाजी की चेतना में इतना आया था कि वह माथे वाला हाथ सर और माथे पर आ-जाकर कुछ गति कर रहा था। शेष शरीर अभी तक निर्जीव-सा ही था।

मुनीमजी को घर जाने की जल्दी थी और इधर लालाजी की चेतना वापिस नहीं आ रही थी। दर्वाजे की झिर्री-से झाँकते हुए मुनीमजी अभी बारीकी से लालाजी की शरीर-परीक्षा कर ही रहे थे कि यकायक मुनीमजी को जोर की छींक आई।

छींक एक क्या दो तीन साथ आईं। छींकों से शरीर को झटका लगा और हाथ के झटके का प्रभाव किवाड़ पर हुआ। किवाड़ खट्ट से फिर अपनी जगह जा लगा।

छींक की आवाज़ और किवाड़ की आवाज़ ने लालाजी की समाधि भंग कर दी। लाला जी चौंक उठे।

"बाहर कौन है ?"

"मैं हूँ तसल्लीराम ?"

"छींका किसने ?"

"मैंने ही ?"

"अच्छा आध घंटे बाद आइये ?"

मुनीमजी लालाजी के परिवार से अपना प्राचीन सम्बन्ध स्थापित करते हुए फिर अधमरे से अपनी गद्दी पर आ बैठे। फिर नल पर जाकर मुंह धोया और भगवान से प्रार्थना करने लगे कि अब कोई छींक रात भर न आये और अगर आये भी तो घर जाकर भले ही आ जाये परन्तु लालाजी के सामने न आए।

आधा घंटा पूरा होने पर लालाजी के पास जाने की फिर तैयारी

की। बहियें फिर कन्धे पर रखीं । तीर बार राम नाम जपा और चल दिए ।

मुनीमजी दर्वाजा खोल कर अन्दर घुसे बहियें रखीं और लालाजी के सामने बैठ गये । अब बालाजी का मुंह खुला—

"बिध मिलाई थी दुबारा मुनीमजी ? "

"हाँ, लालाजी तीन बार मिला चुका ! "

"घाटे में कुछ कमी हुई क्या ? "

' नहीं, लालाजी पूरा दस हजार ही घाटा निकलता है ! "

"माल कितना है गोदामों में ? "

"५०० मन कनक है, १०० मन तारामीरा है, २० मन अलसी है, ६०० मन सरसों है और २८ बोरी बिनौला हैं । २५० मन रद्दी गुड़ है, ६० मन अरहर है और हजार मन खल है । इस तरह से तकरीबन २५३० मन माल है और २८ बोरी बिनौला अलग है । "

"इन में कोई माल ऐसा नहीं जो चनों का घाटा पूरा कर जाय ? "

"इन में तो लालाजी और अगर घाटा न हो तो यही गनीमत है ।"

"घाटा पूरा होंने की और कोई तरकीब सोची ? "

"यह तो लालाजी भगवान् के ही हाथ की बात है । मौसम का हाल तो वैसे हमारे माफिक ही चल रहा है । दूसरे यदि आप कहें तो गेहूँ में ५ सेर मन के हिसाब से जौ, अरहर में ५ सेर मन के हिसाब से मिट्टी और तिलहनों में इतने ही हिसाब से रेत, बोरियां खुलवाकर मिलवा दूं ।

"नही मुनीम, वह समय गया । अब दुकान की साख चली जायेगी और कोई तदबीर सोचो ।"

"वैसे कोई हर्ज तो है नहीं । आप अब भी सत्यनारायण की कथा वैसे ही कराते हैं गीता का पाठ भी पहले जैसा ही कराते हैं, पहले तो

खैर इसलिए कराते थे कि दस पांच बार यार दोस्तों, अफसरों के सामने झूठी–सच्ची कसमें खानी पड़ती थी परन्तु अब तो सब बेकार ही है इसलिए यह पाप फिर पूरा हो जाया करेगा।

"नहीं और कुछ ही सोचो !"

"तब लालाजी चांदी का सट्टा खेल देखो !"

"यह तो तुम जानते ही हो, कई बार उल्टा घर से ही ले जा चुका। अपने भाग्य ऐसे कहां मुनीमजी !"

"तब अबकी बार सेठानी जी की तकदीर आजमाओ। माघ स्नान उन्होंने पूरे महीने किया है। अमावस्या का व्रत भी रखती हैं, कष्टअष्टमी भी मनाती हैं।"

"वह भी इतनी तकदीर वाली नही मुनीम। रही उस के कर्मों के फल की बात वह तो ऐसे बेंक में जमा होता है, जिसकी वापसी की तिथि कब होती है, कोई नही जानता।"

"तब फिर आप लल्ला का भाग्य आजमाइये। आप का लल्ला लाखों मे एक है। याद है जब लल्लू का जन्म हुआ था। आप फड़ लगा कर अनाज बेचा करते थे और आज क्या आलीशान पक्की आड़त की दुकान है। क्या भाग्य है लल्लू का, जन्म लेते ही निस्संतान नाना परलोक वासी हुए, ताऊ भगवान को प्यारे हो गए, चाचा जी पागल हो गए और सारा माल लल्लू का।"

"मगर आजकल उस से कैसे कमवाया जाय अभी तो वह पढ़ ही रहा है।"

"पढ़ रहा है मोल बढ़ रहा है !"

"क्या मतलब ?"

"अजी उसकी शादी कर दीजिये। करनी आपको है ही २०–२५ हजार कहीं नहीं गये।" मिलते कहां हैं ऐसे लड़के सेठजी।

"मगर मैं तो वैश्य-सभा का प्रधान हूं। सभा ने दहेज का बाय-काट कर रखा है।"

"दहेज न लीजिये। सिर्फ खर्चा लीजिये पढ़ाई-लिखाई का।"

"मगर कहूँ किससे कि मैं लल्लू की शादी कर रहा हूं।"

"यह काम मेरा रहा आप खर्चा लिखाइये।"

"यही १२–१३ हजार उसके खर्चे के नाम में डाल दीजिये एक अलग बही बनाकर।"

मुनीमजी चले गये। अगले दिन शादी की सूचना पत्रों में छपी धड़ाधड चिट्ठियाँ आनी शुरू हुईं। पूरे एक सप्ताह मुनीमजी ने चिट्ठियों का संग्रह किया और आठवें दिन चिट्ठियों के ढेर को लेकर लालाजी के पास गये।

चिट्ठियाँ अलग-अलग शैली की, अलग-अलग विचारों की, अलग अलग भाषाओं और भावों की थीं। मुनीम जी सुनाते जा रहे थे, लालाजी सुनते जा रहे थे। कितनों ने १२ हजार देने का वायदा किया था। कितनों ने आलोचना की थी और व्यंग कसा था। कितनों ने कुछ कमी कर देने की प्रार्थना की थी तो कितनों ने कुछ धन अगाऊ और शेष किश्तों में चुका देने का वचन दिया था।

अब मुनीमजी के पास केवल एक चिट्ठी शेष थी। इस चिट्ठी को उन्होंने बड़ी हिफाजत के साथ जेब में रखा हुआ था।

मुनीमजी ने उसे जेब से निकाला और लालाजी को ध्यान से सुनने को कहा। लालाजी दोनों हाथ गद्दी पर रखकर बन्दर आसन की तरह बैठक कर सुनने को तैयार हुए। लिखा था—

चौपट नगर,

माघ तिथि अष्टमी, चन्द्रवार

सिद्धिश्री जोग लिखी, लाला धन्नामल, अधन्नालाल की लाला घसल्लीराम को राम-राम वंचना। अपरंच हाल यह है कि तुम्हारी राजी-खुशी भगवान् गंगामाई से चाहते हैं यहाँ सब राजी-खुशी हैं अपनी राजी-खुशी लिखना।

हमने आपका इश्तहार अखबार में पढ़ा था, पढ़ कर खुशी हुई। हम आपकी मांग मानने को तैयार हैं। बैंक की हुंडी आपको विदाई पर १२ हजार की बजाय बीस हजार की मिल जायेगी पर वह लड़की के वापस लौटने पर ही सकारी जा सकेगी। बैंक में हमारा २० लाख रुपया जमा है आप मालूम कर सकते हैं।

पर आपको यह इतमिनान दिलाना पड़ेगा कि कही आप फिर तो और किसी से पढ़ाई-लिखाई का खर्चा न माँगोगे और लड़की न छोड़ बैठोगे तथा दस-पाँच साल बाद लड़की और उसके बच्चों का खर्चा तो हमसे वसूल नहीं करोगे।

मुनीमजी ज़रा पढ़ते-पढ़ते साँस ठीक करने के लिये ठिठके, लाला व्यग्र हो रहे थे। बोले—"अरे पढ़ो भी और क्या लिखा है, एक यही तो चिट्ठी आई है। बाकी सब को कूड़े पर फिकवा दो।"

मुनीमजी ने फिर आगे पढ़ना शुरू किया—

"आठ हजार और ज्यादा देने का मतलब यह है कि हमने लल्लू का सारा ही खर्चा अन्दाज़े के तौर पर पूरा फैलाया था और वह सारा अपने जिम्मे ले लिया है। हमने सेठानीजी की सुन्दरता की हानि का दाम १ हजार रुपया लगाया है और उनके जन्म देने के कष्ट की कीमत २ हजार रुपये। काफी महंगे भाव से सेठानीजी के तीन साल के दूध के दाम २॥ हजार रुपये लगाये हैं, ६०) रु० लालाजी का परिश्रमिक और बारह आने घुट्टी के बताशे, गुड़ आदि के हैं। १४०) रु० सेठानी जी के लड्डुओं, सोंठ आदि के जोड़े हैं। शेष पैसों में ब्राह्मण, नाई, डाक्टर आदि आगये हैं।

अतः आप लग्न दिखाकर दिन ठीक कर लीजिये और सूचना भिजवाइये।

दस्तखत

धन्नामल, अधन्नालाल

मुनीमजी चुप हो गये। दोनों ने एक दूसरे को देखा। लाला जी बोले—

"क्या इरादा है मुनीम ?"

"मैं तो लालाजी कोई हर्ज नहीं देखता ?"

"हुँडी न सकरी तो ?"

"तो दावा कर देगें, उनका खत हमारी गवाही का काम देगा।"

"ठीक है ?"

लालाजी की बारात गई, लौट आई। खासा दहेज मिला। मिली बीस हजार की हुंडी।

अब लालाजी को जल्दी यह थी कि कब वह लड़की को लिवाकर ले जायें और कब हुंडी सकारी जाय।

लड़की चली गई। लालाजी ने हुँडी बैंक भेजी। जवाब मिला संकारी नहीं जायेगी। उनका इंकारी का तार आ गया है।

अब तो लालाजी घबराये। मुनीमजी बुलाये गये। मुनीम जी ने फिर हिम्मत बंधाई और लालाजी को पत्र की याद दिलाई।

"पहले एक खत और डाल कर क्यों न देखलो मुनीमजी ?" लाला जी बोले।

"हां-हाँ क्या हर्ज है, सीधी अंगुलियों से घी निकल आये तो टेढ़ी क्यों की। अब हैं तो अपने रिश्तेदार ही।"

मुनीमजी ने लालाजी के प्रस्ताव का समर्थन किया। चिट्ठी लिखी गई। कुछ गर्मी से कुछ नर्मी से। थोड़ी धमकी भी रुपया न देने पर दावे की गई।

जवाब आया हमारे ऊपर लाला का कुछ नहीं चाहता जो देना था दे दिया। दान स्वेच्छा से दिया जावा है।

लालाजी ने फिर उनकी चिट्ठी की नकल भेजकर उनका वायदा याद दिलाया तो उत्तर बड़ा लम्बा-चौड़ा आया था और उसमें यह पूछा गया था कि लल्लू के नाना से लल्लू को क्या मिला। ताऊ और चाचा की जायदाद कितनी मिली। नामकरण संस्कार और सालगिरहों पर जो कुछ लल्लू को मिला है, उसका चिट्ठी में जिक्र करो, टीके आदि में आई रकम का हिसाब दो। यदि अदालत की ओर बढ़े तो हमारा वह खत तुम्हारे खिलाफ गवाही का काम देगा।

अब लालाजी निराश होकर बैठ रहे। लालाजी ने तब से कसम खाई है कि वह, यदि फिर सेठानी की कृपा से लल्ला हुआ तो उसका खर्चा पहले बेटी वाले से धरा लेंगे और उधार एक पाई का भी न करेंगे चाहे इसे दुनिया ''लल्लू की निलामी'' ही कहे।

नया मुर्गा

डायरेक्टर चौधरी दिनेश का दिल अब चंचल सिनेटोन से उखड़ चुका था क्योंकि आज सेठ करोड़ीमल लक्ष्मीदास ने उन्हें अपनी दिल की घुंडी खोलकर दिवालिये दुकानदार की तरह से अपने दिल की दुकान खोलकर दिखा दी थी कि अब दस-बीस लाख तो क्या दस पाँच हजार रुपये भी मेरे लिये मुश्किल हैं।

चंचल सिनेटोन के एक मात्र मालिक सेठ करोड़ीमल की राय अब यह थी कि कुछ आंख के अंधे और गांठ के पूरे सिनेमा मालिकों को मूंड लिया जाय और उनसे दसदस-बीसबीस हजार रुपये पेशगी ले लिये जायें या कोई नया चित्र-वितरक खोज निकालें जो ७–८ लाख उधार दे दे और "डूबती नैया" अधूरे चित्र को खींचकर पाल पर ले आया जाय।

चौधरी—"यदि कोई ऐसा अक्लमन्द हाथ न लगा, जो अपने पैसे को नरसी-भक्त की तरह साँवलशाह को दे दे तो क्या होगा?"

सेठ—"तब इनसालमेंट (दिवालिया) होने की दर्खास्त कल दे दूंगा और मैं कहीं मुनीमगिरी की नौकरी खोज लूंगा।"

चौधरी—"चन्द्रा से आधा रुपया हीरोइन का पार्ट आरम्भ करते ही तय हुआ था और दिया गया अभी चौथाई भी नहीं। ८० हजार के ठेके में से ८ हजार ही उसे दिये गये हैं। बाकी का तकाजा रोज मुझ पर होता है।

सेठ—"अभी फिल्म कुल ८०० गज बनी है वह चाहे तो उसे ही लें जाये।"

चौधरी—"अभी तक उस फिल्म की कीमत कुल आपको कोई कबाड़ी अधिक से अधिक अठन्नी दे सकता है।"

सेठ—"तब तो पूरी फिल्म के भी आप रुपया सवा रुपया ही दिलाते जनाब ?"

चौ०—"तब तो क्या पूछते हो सेठ ! सर आगाखाँ की तुला के लिए तो प्लाटिनियम नहीं मिला था परन्तु आप खरीद सकते थे। रुपयों की बरसात होती, सिनेमाओं की खिड़किया टूट जातीं और १०० में से कम-से-कम ९२ सिनेमा घर सिलवर जुबली मनाते।"

सेठ—"मुझे तो इतने से ही सन्तोष था कि लानतों की बरसात न होती और लौट कर बुद्धू घर आ जाता।"

चौ०—"खैर अब यह तो बताइये कि आगे क्या करना है ?"

सेठ—"सवेरे स्टूडियो में ताला"

चौ०—"ऊपर से सरकारी ताला भी पड़ जायेगा।"

सेठ—"हाँ यही मै चाहता हूँ। डबल ताला और भी अच्छा रहेगा।"

चौधरी सेठ के कमरे से निकलकर पहले घर की ओर चला परन्तु फिर कुछ सोचकर ताजमहल होटल का रुख किया और शराब मंगवा कर एकान्त में बैठा सोचने लगा।

चौधरी यह अच्छी तरह जान चुका था कि अब इन तिलों में तेल नहीं है और सेठ खालिश खल ही खल रह गया है। इस पुरानी खल पर शायद ही कोई भैंस मुँह रखे। इसलिए अब 'नये मुर्गे' की ही खोज करनी पड़ेगी। इसी उद्देश्य से वह यहां आया था। और उसका आना सार्थक भी हो गया।

जैसे ही चौधरी बाहर निकला कि उसकी नजर उसके बालमित्र एक सेठ पुत्र प्रमोदचन्द्र पर पड़ी।

"हलो प्रमोद सेठ !"

"हलो–हलो चौधरी क्या हाल है, आओ भगवान् ने ही मिला दिया समझो आज।"

"नहीं दोस्त इस मिलन का श्रेय तो ताजमहल होटल को ही देना पड़ेगा।"

"हाँ, वैसे आजकल मिलने के दो ही स्थान हैं—जिन्दे रहे तो होटल में और मर गये तो मरघट में, वैसे तो एक शहर में रहते भी नहीं मिल पाते।"

"खैर यह तो बताओ कि क्या अभी तक मारवाड़ के मतीरों को हा प्यार कर रहे हो।"

"नहीं, बम्बई की मौसमी भी कभी-कभी हाथ लग जाती हैं।"

"कौनसा सट्टा चल रहा है, आजकल ?"

"कौनसा शुरू करूँ, बताओ ?"

"पहले यह बताओ कि कितना धन लगा सकते हो ?"

"पाँच लाख तक !"

"काफी है दूने करने के लिए !"

"कौनसे सट्टे से ?"

"फिल्मी सट्टे से !"

"अगर फिल्म फेल हो गई ?"

भारत में ही चलानी है हमें तो और यहाँ आप रद्दी से रद्दी चला लीजिये। हाँ, चलाने की कुछ तरकीब हैं, वह मैं जानता हूँ।"

"अच्छा सोचूंगा। और परसों जवाब दूंगा जरा पिताजी की भी राय ले लूं।"

चौधरी जब होटल से निकले तो उनके दिल के दरिया में नई रवानी आ रही थी पैर तेजी से उन्हें कहीं लिये जा रहे थे।

चौधरी जल्दी से जल्दी चन्द्रा के पास जाकर उसे इस खुशखबरी को सुनाना चाहते थे कि ताजमहल होटल के अड्डे पर उन्हें एक और मुर्गा मिल चुका है, फक्त छुरी के नीचे लाना बाकी है। घर आकर चौधरी ने जैसे ही चन्द्रा को देखा तो उछल पड़े—'हलो चन्द्रा क्या हो रहा है ?'

"नौकरो की हड़ताल और कर्ज वालों के प्रहार।"

"दो तीन दिनों में सभी झंझट दूर हो जायेंगे।"

"बेशक क्योंकि या तो मुझे मकान छोड़ना पड़ेगा या बम्बई छोड़कर कहीं एक-दो-तीन होना पड़ेगा। आपकी कम्पनी से अब मुझे कोई आशा नहीं।"

"हाँ, चन्द्रा यह बात ठीक है. परन्तु एक तरकीब है चलो सेठ के पास चलें और उससे अपने रुपयों में कम्पनी खरीद ले या हिस्सा ही करलें।"

"उस फर्नीचर के कितने पैसे उठेंगे ?"

"अधूरी फिल्म भी तो है।"

"दो आने की।"

"अरे नहीं दो लाख की।"

"कैसे ?"

"ग्राहक मैंने तलाश कर लिया है। दो-तीन दिन बाद कम्पनी और अपने को उसे बेच देंगे।"

"क्या मतलब ?"

"मतलब साफ है कम्पनी बेच कर खुद उसी कम्पनी में नौकरी कर लेंगे।"

"फिर देर क्या है ?"

"देर इतनी ही है कि सेठ को तो मैं रास्ते पर लाऊँ और नये सेठ को परसों तुम मेरी जगह पर जाकर उल्लू बनाओ।"

परसों आई। चौधरी ने सेठ को अपना दस हजार का हिस्सेदार मानकर कम्पनी अपने नाम बिकवाली और अपनी तनख्वाह की रसीदें लिख दीं।

इधर शाम को चेहरे की चूनाकारी करके चन्द्रा ने होटल का रास्ता नापा और प्रमोद पर सौंदर्य का भूत चढ़ाना शुरू किया।

"जी, आते तो आज चौधरी ही लेकिन उन्हें आज सेठ खजानचन्द ने एक फिल्मी व्यवसाय के लिए जबर्दस्ती ही बुला लिया।"

"कोई बात नहीं श्रीमती चन्द्रा आप भी तो इस लाइन में चौधरी से दो कदम आगे ही हैं।"

"पहले मैं आपकी भूल दूर करदूं, मै श्रीमती नहीं, मिस हूँ। अभी मेरी आयु वैसे श्रीमती बनने लायक है भी नहीं। अभी पिछले साल ही दो दाँत दूध के टूटे है।"

"हाँ-हाँ सो तो है ही। रही काम की बात मैं तुम्हारे विश्वास पर इस नये कारबार का सत्कार करने को तैयार हूँ।"

चन्द्रा रात को १ बजे होटल से लौटी और मामला पक्का कर लिया। चौधरी ने सेठ से कम्पनी खरीदी और नये सेठ प्रमोद को सौंप दी दो लाख रुपये में। चौधरी डाइरेक्टर बने और चन्द्रा फिर हीरोइन। 'डूबती नय्या' फिर किनारे की ओर चल दी।

पूरे १० लाख की होली करने के बाद चौधरी 'डूबती नय्या' को खींचकर किनारे पर लाये। अब 'डूबती नय्या' दो महीने से सेंसर-विभाग के समुद्र में पड़ी थी। प्रमोद को दूर-दूर तक किनारा ही दिखाई नहीं देता था। अन्त में प्रमोद चौधरी से एकांत में मिले।

"चौधरी अब क्या हो?"

"देवी भेंट मांगती है सेठ।"

"कितनी।"

"कुल ५० हजार।"

"आखिर उसमें ऐसी कौनसी कमी है।"

"उसमें कमी ही नहीं इसलिए भेंट जरूरी है। विज्ञापन बाजी की नजर भी कुछ करो।"

"अच्छा फिल्म मंगवाओ और जरा उसे दिखाओ, आगे फिर सोचा जायेगा।"

फिल्म मंगवाई गई, प्रमोद सामने बैठे। कथानक शुरू हुआ।

स्कूल जाने वाली लड़की के पीछे से एक आवारा लड़का साइकिल से टक्कर देकर खुद भी गिर पड़ता है और उसे भी गिरा देता है। बाद में वह अपने भौंडे गले से उठकर गाता है "साइकिल के पहिये से दिल मेरा घूमा। भूल से कपोल के 'सैंडिल' ही चूमा।" गाता हुआ भाग जाता है और अगले दिन फिर एकान्त रास्ते पर जा बैठता है। जैसे ही लड़की उधर से आई कि कागज का टुकड़ा गिरा, नायक ने उठाया और उसे बेतहाशा चूमा। बाद में खोलकर पढ़ा—दो लाइनें थीं।

"चोट लगी किसके दिल भला किसका।
साइकिल उठाकर कोई क्यों खिसका॥"

बस अगले दिन से प्रेम-कथा आरम्भ हो जाती है और एक दिन शहर छोड़कर दोनों भाग जाते हैं। कुछ दिन बाहर मौज करते हैं और बाद मे लड़की वेश्या बना दी जाती है। उसके वेश्या समय के गाने और भी भद्दे और अश्लीलता से भरे होते हैं। अन्त में युवक जेब-कटी करने में पकड़ा जाता है और युवती को एक बदमाश मार डालता है।

फिल्म खत्म होते ही मैदान मारे सेनापति की तरह से चौधरी ने प्रमोद की ओर देखा।

प्रमोद उस समय दूसरी दुनियाँ में थे।

"कहो कैसी रही ?"

"ऐसी कि शायद ही कहीं, यह दो चार रुपये कमा सके।"

"आखिर इसमें कमी क्या है ?"

"इसमें अच्छाई क्या है, इन तुम्हारे गानों कौन सुनेगा ?"

"ताँगेवाले।"

"और उनकी सवारियाँ।"

"सवारियाँ सबसे पहले आयेंगी।"

"हाँ, आयेंगी और पर्दे फाड़ेंगी।"

"कितने सुरीले गीत हैं ?"

"बेशक यही पता नहीं चलता कि गाने वाला रोता है या गाता है ?"

"कला की दृष्टि से ?"

"कला की दृष्टि से इसे जला डालना अच्छा। आज के नवयुवकों या लड़कियों को यह गाने नहीं चाहियें। नया खून जाग उठा है।"

"रुलाना भी तो इसमें है ?"

"अरे इस रुलाने से तो सोते कुत्ते तक जान पड़ेंगे।"

"खैर आप ५० हजार दीजिये कुछ देवी और प्रेस के देवताओं को देकर देखिये मैं क्या करता हूँ।"

प्रमोद ने ५० हजार का चैक दे दिया और तीसरे दिन ही सारे काम हो गये। पूरे-पूरे पेज के विज्ञापन दैनिक पत्रों को मिले।

उस उपकार के सत्कार स्वरूप सम्पादकों ने पेट भर कर चित्र की प्रशंसा की परन्तु जिस वितरक ने उसे लिया वही दिवालिये के कानून वकीलों से पूछने पहुँचा और दिवालिया बना। रहे सेठ प्रमोद उन्हें इतना रुपये का पश्चाताप हुआ कि रहे-सहे काठ कबाड़ को बेचकर बम्बई में एक नाव बनाने की दुकान खोल ली और अपनी प्रत्येक नाव पर अब वह दो लाइन लिखवाते हैं—

"डूबे न नैया सागर में मेरी,

भगवान से विनय है रोज यही मेरी ।"

"सुना है चन्द्रा ने किसी प्रिवीपर्स प्राप्त राजकुमार से शादी करली है और चौधरी अब भी "नये मुर्गे" की तलाश में ताजमहल होटल के चक्कर काटते हैं।

गायिका के तख्त के नीचे

लता मंगेशकर मेरी कमर पर बैठकर कब तक गाई इसका पता तो किसी पैसों की होली खेलने वाले से पूछ कर बता सकता हूँ, क्योंकि जिस समय श्रीयुत वेदी ने अपना जिह्वा विधेयक लागू कर दिया था, तभी मैं तो सीधा चूहे की तरह, मंच के तख्तों के नीचे खिसक गया था।

गर्दन से कुछ नीचे की ओर वाले दिल में, जो उस दिन मेरे पास ही था और जिसे मैं हमेशा को तो क्या, घड़ी-दो-घड़ी के लिए भी किसी गायिका को नहीं देता—अपशकुन उठ रहे थे कि बच्चू बुरे फंसे अच्छा होता जो बुद्धू की तरह लौटकर घर चले जाते या ५ आने के पैसे किसी सदाचार मंदिर (सिनेमा) की भेंट चढ़ा आते।

यहाँ आना खतरे से खाली नहीं। 'आ बैल मुझे मार' की तरह स्वयं शिकार ही शिकारी के घर चला आया है। जगह-जगह विद्यार्थियों और सरकारों के तो वैसे ही सम्बन्ध खराब हो रहे हैं, कौन जाने गाना सुनवाने के बहाने सरकार ने पिटवाने को ही बुलवाया हो।

विद्यार्थियों और बन्दरों को प्रायः सभी सरकारें एक ही वर्ग का मानती हैं और इसीलिये एक-सा ही सलूक करती हैं। पंजाब में बन्दरों की पूंछ काट-काट कर या तो लंडूरा करके किसानों को परेशान करने के लिये छोड़ दिया जाता है, अथवा अमेरिका के मदा-

रियों के पैसों से बन्दरों का विनिमय कर लिया जाता है। तब क्या पता किसी माल के बदले किसी विदेशी सरकार से विद्यार्थियों का भी सौदा कर रखा हो और इन्हें इकट्ठा करने के लिये ही लता मंगेशकर को बुलवाया गया हो। इसलिये मैंने दिल की बात पर पाकिस्तानी मुसलमानों की तरह विश्वास किया और मीर लायकअली की तरह ही लोगों की आँखें बचा कर मंच के नीचे घुस गया।

भगवान् जाने वह कब तक मेरी कमर पर बैठकर गाती रही और विद्यार्थियों पर क्या क्या बीती। विद्यार्थी अपने घरों को लौट भी पाये या नहीं अथवा किसी माल से बदल लिये गये मुझे कुछ पता नहीं।

मेरी आंखों ने कब अपनी ड्यूटी समाप्त कर विश्राम किया और कब मजदूरों ने फर्शों और दरियों के ढेर को मेरे पास इकट्ठा कर दिया, मुझे कुछ पता नहीं।

मेरी नींद तो उस समय हिरन हुई, जब एक ६-७ फिट के आदमी ने मेरे एक पैर को पकड़ कर मुझे बाहर घसीटा।

आदमी क्या था, अच्छा खासा दैत्य था। पहिले तो मुझे ख्याल आया कि हो न हो यह अलाउद्दीन के चिराग वाला ही दैत्य हो लेकिन यह बताने पर कि वह लालकिले के असली मालिक शाहजहां हैं, छूटती नब्ज वापस आगई।

"कौन है तू ?" आगन्तुक ने पूछा।

"स्टूडैण्ट।"

"अबे उर्दू में बोल।"

"तालिबेइल्म।"

"इन तख्तों के नीचे कौन-सा सबक याद कर रहा था ?"

"गाना सुनने आया था, नींद आ गई।"

"तुलबा और गाना, हैरत !"

"अब तुलबा गाने को गैरत नहीं मानते।"

"तो क्या यहाँ रोज गाना होता है ?"

"साल में एक आध बार तो जरूर होता है ।"

"कौन कराता है, यह गाना ?"

"सरकार !"

"बादशाहत किस की है ?"

"कांग्रेस की ।"

"यह कौन सा मज़हब है ?"

"मज़हब से परहेज करने वालों का ।"

"कौन बादशाह है ?"

"बादशाह के नाम तो सिफर है, किन्तु दस-पाँच आदमी मिल-जुल कर ही काम चलाते हैं ।"

"क्या वे सब तख्त पर इकट्ठे ही बैठते हैं ?"

"नहीं, अलग-अलग कुर्सियों पर ।"

"जिन पर पैर नीचे पड़े रहते हैं ?"

"जी, वे पैरों और सिर के लिए आराम की आवश्यकता नहीं समझते । "

"उनकी बेगमातों के रहने का क्या इन्तज़ाम है ?"

"कुछ की तकदीर तो अभी अभी ही जागी है, कुछ की जगकर भी सो गई है, कुछ अपने बंगलों पर किताब की दुर्दशा करती रहती हैं ।"

"तोबा–तोबा क्या किसी के आठ-दस भी बेगमें नहीं ?"

"जी, कुछ को रंडुवा रहने का ही शौक है ।"

"यह लोग दरबार किस दिन करते हैं ?"

"कुछ दिन पहले तो रोज करते थे ।"

"इन्साफ ठीक होता है ?"

"इन्साफ कहीं-कहीं साफ भी किया जाता है ।"

"खूनियों और चोरों को क्या सजा दी जाती है इस हकूमत में ?"

"कत्ल होने वालों और चोरों से लुटने वालों को मौके के गवाह पेश करने पड़ते हैं; यदि न कर सके तो चोरों की जगह उन्हें भी हवालात दे दी जाती है।"

"तुमने यह पाजामा ऊपर क्यों बांध रखा है ?"

"यह पैन्ट है, ऊपर ही बांधी जाती है।"

"अच्छा, पहले भी मैंने कुछ गोरे–गोरे आदमियों को पूरे और आधे पाजामे ऊपर बाँधे देखा था, यहाँ किले में।"

"जी, वह अब चले गये।"

"तब यह उनकी पोशाक की नकल है ?"

"जी।"

"जा लालखाँ को बुला ला !"

"कहां से ?"

"जहन्नुम से !"

"वहां का रास्ता तो आप जानते हैं, या अमेरिका वाले जानते होंगे मैं क्या जानूं।"

"अबे, वह मेरे साथ आया था, जामामस्जिद में इबादत कर रहा है खुदा की।"

"तब फौन किये देता हूं।"

"कुछ भी कर, उसे जल्द बुला।"

मैंने जैसे ही जामामस्जिद का नम्बर मिलाकर हलो–हलो किया वैसे ही शाहजहाँ की रूह ने मेरी गरदन पकड़ली।

"यह अज़ान का समय नहीं है बे ?"

"मैं तो फोन कर रहा हूँ।"

"अबे तो इस चिलमची में मुंह डालकर हाय–हाय क्यों कर रहा है ?"

"उनको बुला रहा हूँ।"

"अबे जाकर खुद ही कह दे कि हम फतहपुर सीकरी जाना चाहते हैं।"

"ट्रेन तो सवेरे जाएगी, रात को चाहे यहां रहिए या मुसाफिर-खाने में।"

"मैं उस सवारी से नहीं जाना चाहता, जो आदमी को लेकर कहीं भी चलदे; दो फरिश्ते काफी हैं।"

"जी।"

"अबे तेरी शादी हुई है ?"

"जी, कानूनी तो नहीं हुई है।"

"गैर कानूनी से क्या मतलब ?"

"वही प्रेम–प्राम।"

"हूँ, निकाह न करने वालों को औरतों का गाना सुनने का कोई हक हासिल नहीं होना चाहिए।"

"आजकल तो बिना शादी वालों के भरोसे ही गाने वालों की महफिल जमती है।"

"मैंने खुद लड़के पढ़ाये हैं, काश पहले जैसे उस्ताद होते तो तुम लोगों को जानवर न बनने देते।"

"तब इन सिनेमाओं पर छत तो क्या छप्पर भी न पड़ते।"

"मैं आग लगवा देता अपने वक्त में, इन हरामगाहों को, जहाँ चालचलन बिगड़ते हैं।"

"अब तो इनमें आग बुझाने का सरकारी इन्तजाम रहता है।"

"कसरत करके कितना दूध पीता है तू ?"

"कसरत करने को डाक्टर ने मना कर दिया है और दूध की जगह नजले की वजह से चाय पीता हूं।"

"तभी तो तेरी सूरत का नूर फितूर में बदल गया है" दुखी से हो कर शाहजहां बोले—

"सुन, अगर आज से तुझे किसी नाच में मैंने देखा तो तेरी खैर नहीं, चल घर भाग जा और दफना दे उस तालीम को जो तुझे कब्रिस्तान ले जा रही है।"

पांच बज चुके थे, घण्टे की आवाज ने शाहजहाँ को चौंका दिया, एक पटाखा सा फटा, धुआँ हुआ और रूह गायब हो गई।

बस, उसी दिन शाम को हलवाइयों और होटलों का हिसाब किये बिना ही मैं घर भाग आया और अब मजे से घर का काम करता हूं, वजन पठानों की तरह बढ़ रहा है, दिल्ली जाने का मैं कभी अब नाम भी नहीं लेता।

नीली साड़ी

प्यार का बुखार ऐसा मनहूस रोग है कि कभी भी, कहीं भी, इधर-उधर के आने जाने से भी हौलू और बुद्ध-से-बुद्धू आदमी तक पर चढ़ बैठता है।

और कहीं पर चढ़ आये तो अपने-बिगाने, यार-दोस्त, घर-बाहर वाले रोग और रोगी की देखभाल कर लेते हैं, परन्तु यदि कही यह रोग किसी गाड़ी, प्लेटफार्म या लारी में लग जाय तो बीमार के साथ तीमारदार की भी आफत आती है।

उस समय बीमार के पास गाड़ियों की खिड़कियों को झांकने, टिकिट घर की खिड़की पर नजर गाड़ने और मुसाफिरखानों की तलाशियों के अलावा और कोई चारा नहीं रह जाता। अगर रहता भी है तो बस यही कि जिस गाड़ी के डब्बे से प्रेम के कीटाणु लगे उसी गाड़ी का टिकिट वहीं तक ले लिया जाय जहां तक गाड़ी जाकर खत्म होती है क्योंकि प्रेम तो अपनी छटा दिखाकर गाड़ी के साथ चल देता है और प्रेमी, गाड़ी, प्लेटफार्म, खिड़की या मुसाफिरखाने में खड़ा टापता रह जाता है। इसलिये प्रेमी को टिकट कटाना और गाड़ियों में भटकना ही पड़ता है। अतः उस प्रेम की चमक-दमक और ठसक—मसक को देख कर एक बार कसक निकल जाय यही इच्छा रहती है।

एक बार अपने एक यार केसर उर्फ कसेरू को भी दिल्ली स्टेशन पर इस रोग ने धर दबाया। सहारनपुर पैसेन्जर की खिड़की से प्रेम-कीटाणु आये थे। अपना सदा यही ख्याल रहा कि कसेरू जैसे उज्जड़ पर तो कम से कम इस रोग का हमला कहीं भी कभी भी हो सकता ही नहीं; मगर यह अपना ख्याल बस ख्याल ही रहा और कसेरू सहारनपुर पैसेन्जर के प्रेम में फंस गया।

जब गाड़ी तकरीबन शाहदरा पार कर गई और प्लेटफार्म खाली हो गया तब मुझे कसेरू का ख्याल आया जो अभी तक भी सिगनल की ओर मुंह किये सिगनल ही बना खड़ा था। वह बिल्कुल ऐसा लग रहा था गोया ऐक्सरे खिचवाने के लिए हजरत को किसी डाक्टर ने सीधा खड़ा कर दिया है या तारवालों ने कोई बिजली का खम्बा गाड़ दिया है।

उससे बोलने और उसके पास जाने तक से भी डर लग रहा था कि पता नहीं कौन जाने इस अपनी अम्मा के इकलौते बेटे को किसी भूत ने ही दबा लिया हो या कोई चुड़ैल इस पर चढ़ी बैठी हो और कौन जाने बिजली का करन्ट ही कहीं से सौट हो रहा हो। छूते और छेड़ते भी डर लग रहा था और छोड़ते भी नहीं बनता था क्योंकि ऐसा बुद्धू दोस्त मिलना, हमें और उसके माँ–बाप और उसकी बीबी को कठिन ही था।

अतः जरा हमने हिम्मत से काम लिया, हनुमान चालीसा का प्रेतों को भगाने वाला अध्याय पढ़ा और पाँच बार गायत्री-मंत्र का जाप करके एक कनकी अंगुली को कसेरू के सर से छुला दिया। कसेरू चौंके और हम बहके।

"क्या सो रहे हो ?"

"चली गई क्या ?" मैं स्वप्न देख रहा था।

"हाँ, शाहदरा कभी का पार कर गई।"

"कौन थी, वह ?"

"दिल्ली-सहारनपुर पैसेन्जर गाड़ी।"

"मुझे छोड़ गई ?"

"तुम्हें तो देहरादून जाना था ? उस पर जाने से क्या लाभ ?"

"अरे तुम क्या बक रहे हो ?"

"तुम्हारी बकवास सुन रहा हूँ टिकिट ऐक्सप्रेस का और फिक्र में पड़े हो पैसेन्जर गाड़ी की।"

"अरे वह मुझे मार गई ?"

"कैसे मार गई, वह तो प्लेटफार्म पर चढ़ी भी नहीं।"

"मेरा दिल लेकर अकेली चली गई।"

"कोई औरत थी क्या ?"

"कौन थी, कैसी थी, मुझे कुछ पता नहीं, एक बिजली थी, एक चिनगारी थी, एक करार थी, एक तलवार थी जो दिल चीर कर उस चिरे हुए दिल को भी अपने साथ ही ले गई।"

"ओफ, यह बुरा हुआ। तुम पर लगातार आक्रमण होते रहे और यहाँ पता तक भी न चला, वरना इतनी पुलिस और इतने मुसाफिरों के होते सारे हथियारों के वार तुम्हारे ऊपर कोई कर जाय, तुम्हारा दिल यूँ लुट जाय, नामुमकिन था; अब पुलिस को भी खबर करने से कोई लाभ नहीं, पता नहीं वह तुम्हारा दिल तुम्हें दिला भी सके या नहीं।

"तुम घर जाओ और अपना रास्ता नापो या मुझे कोई इलाज बताओ।"

"इलाज तो हैं तीन, इनमें से चाहे जौन सा कर डालो, पहला है किसी गाड़ी के नीचे लेटकर भूत बन जाओ और छाया बनकर अपनी प्रेमिका के पीछे लग जाओ।"

"तुम तो मज़ाक कर रहे हो और यहाँ फरिश्ते मेरी इन्तजार कर रहे हैं ?"

"तब तो पहला इलाज ही ठीक है।"

"फिर वही बात, कुछ और भी है ?"

"हां, पागलखाना है, जहाँ तुम्हारे बहुत से भाई अपनी-अपनी सुनाते रहते हैं। रात को चाँद-सितारों से बातें करते हैं, जिन्हें चारों ओर प्रेमी-प्रेमिकाओं के जोड़े ही नजर आते हैं।"

"क्या छायावादी कवियों की तरह बक रहे हो, राह की बात बताओ ?"

"राह की बात यह है कि पहले चाय पी जाय और फिर राम का नाम लेकर देहरा ऐक्सप्रैस में सवार हुआ जाय और सहारनपुर में जहां दोनों गाड़ियां मिलेगी,–उसके दर्शन तुम्हें करा दिये जाँय।"

"मगर मैं चाय भला एक तिनका तक भी निगलने को तैयार नहीं। मैं तो आज उस चंदा को देखकर ही अपना व्रत खोलूंगा वरना आज देहरादून के रास्ते हरिद्वार में मेरा क्रिया-कर्म कर जाना।"

'केसर को ज्यादा समझाना, भैंस के आगे बीन बजाना ही था क्योंकि प्यार के बुखार में समझाना-बुझाना उतना ही नुकसान देने वाला होता है जितना नमूनिये मे रोगी को कचौरी खिलाना। इस रोगी को समझाने-बुझाने वालों से बड़ा दुश्मन और कोई दिखाई नहीं देता। जो कुछ समझाया जाय उसका उल्टा ही अर्थ यह लगाता है। क्योंकि पहले ही समझाने पर वह स्वार्थी, नासमझ, अक्लहीन आदि की डिग्रीयें हमें दे ही चुके थे। उन्हें यहाँ तक सब्र दिलाया कि भाई कसेरू भगवान् और कोई नक्ल तुम्हें अच्छी दिखाएगा जरा प्लेटफार्म का एक चक्कर तो लगाओ, गाड़ियों की खिड़कियाँ देखलो या कुछ देर के लिये मुसाफिर-खाने में ही हो आओ।

"असम्भव !" कसेरू बोला—

"संभव क्या है ?"

"बस जिधर दिल गया है, उधर ही जाना।"

"तो लाइन–लाइन जा सकते हो।"

"हाँ, उधर ही जाता हूँ, जिसे मैं जानता तक भी नहीं, मैं गाड़ी के पीछे-पीछे जाऊंगा।"

"तब तो यही अच्छा है कि अपनी ऐक्सप्रैस से ही चला जाय।"

कसेरू ने सर हिलाया जिससे उसके पागलपन में ऐसे चिन्ह नजर आए जो रोग को ला-इलाज नहीं बताते थे।

गाड़ी में अभी १८ मिनट बाकी थे। कसेरू का सब्र रस्से से तुड़ा रहा था, वह बेचैन था। चाय के लिये कहने पर ऐसे आंखें तरेर रहा था गोया सहारनपुर पैसेन्जर में मैंने ही उसकी प्रेमिका को बैठा कर भगा दिया हो और अब मैं ही देहरादून ऐक्सप्रेस को छोड़ने के लिए सीटी नहीं बजा रहा हूँ।

"पता नहीं गाड़ी कब जाएगी?"

"अपने समय पर?"

"वह समय कब आएगा?"

"यह घड़ी बतायेगी।"

"कौन जाने आज घड़ियों को क्या हो गया है?"

"जाने वाली चाबी अपने साथ ही शायद ले गयी है घड़ियों की?"

"इन घड़ियों की चाबी ले गई हो या न ले गई हो पर मेरे दिल की चाबी तो ले ही गयी है; और जल्दी ही उसकी टिक-टिक अब बन्द होने वाली है।"

कसेरू का पागलपन अभी जारी था, कुछ आप ही आप गुन-गुना रहा था; कभी लम्बी आह भरता, कभी दाहिने हाथ को दिल पर रख कर खड़ा हो जाता तो कभी पेशानी पर हाथ ले जाता। इसी क्रिया के बीच में गाड़ी चल दी और फक फक दौड़ने के बाद गाजियाबाद आया तो कसेरू चौंके।

"आ गया?"

"गाजियाबाद।"

"सहारनपुर ?"

"अभी तो मेरठ भी दूर है।"

"क्या रोज गाड़ी सहारनपुर इतनी ही देर में पहुंचती है ?"

"कभी-कभी लेट भी हो जाती है।"

"तब क्या होता है ?"

"बहुत से प्रेमी छलांग भी मार देते हैं डब्बे से।"

"एक बार उसे देखकर तो छलांग भी लगा सकता हूँ।"

"पहचान भी लोगे ?"

"पहचान तो यहीं से रहा हूँ।"

"कैसी है ? कैसा रंग है ? कैसा लिवास है ? कुछ तो बताओ।"

"यह मैं कुछ नहीं बता सकता, एक चमक थी जिसने मुझे चकाचौंध कर दिया। एक कटार थी जिसने मेरा दिल तराश दिया। एक नीली साड़ी में लिपटी हुई हवा थी जो मेरा दिल उड़ा कर ले गयी—फक-फक-फक।"

राम-राम करके सहारनपुर आया; कसेरू उछले और कसेरू को उछलता देखकर मै भी उछला मानों किसी ने एक तख्ते पर से हम दोनों को उछाल दिया हो।

कसेरू डब्बे से उतर कर चार-पांच सीढ़ियों को एकदम पार कर गये और पुल पर एक चांट वाले से जा टकराये।

चाँट वाले से चाँटा खाने से पहले ही मैंने चांट वाले को समझाया और एक कलदार उसे थमाया तब कसेरू को पिटने से बचाया वरना कसेरू के साथ अपनी पिटाई का भी अन्देशा था।

कसेरू दूसरे प्लेटफार्म पर पुल से उतर कर बेतहाशा दौड़े जा रहे थे खिड़कियां झांकते जा रहे थे। एक खिड़की पर जो निगाह उठाई तो उठी की उठी ही रह गई।

उंगली से इशारा करते हुए कसेरू बोले—"यह है मेरा दिल चोर, जो मुझे दिल्ली छोड़ यहां भाग आया।"

"तब देख क्या रहे हो? जरा जल्दी इधर आओ, दिल भर कर देखना वह सामने गेट है जिससे वह जायेगी। यह गाड़ी यहां तक ही आती है और यदि ज़रूरत समझो तो पागलों की तरह पीछे-पीछे चला जाया जायेगा।"

कसेरू—'परन्तु मैं देखूंगा कैसे और देखकर जिन्दा रहूँगा कैसे? जब बिना देखे ही मेरा यह हाल है तो देखकर क्या जान बच जाएगी या मेरी बेहोशी लौट आएगी?"

"आंखें नीची करके?"

बड़ी कठिनता से लड़खड़ाते पैरों से कसेरू मेरे साथ बाहर निकलने वाले आदमियों के दरवाजे पर आये और उठाइगीरों की तरह से एक ओर खड़े हो गए।

हम दोनों ने अपनी-अपनी निगाहें नीची कर रखी थीं। मैंने इस-लिये कि कोई मुझे उठाईगीरा न समझ ले और कसेरू ने इसलिए कि कहीं प्रेमिका की चकाचोंध से उसकी आँखें न चौंधिया जायें।

जब तक वह पुल से उतरकर भीड़ में से निकल कर कसेरू के पास नहीं आयी तब तक कसेरू आँखें नीची किये खड़े ही रहे। पास आने पर कसेरू ने जो गरदन उठाई तो नीली साड़ी वाली नाजनी, दिल चोर, नूरजहां, कामिनी, कुल भूषण, प्रेम की जीती जागती तस्वीर जो कसेरू का दिल तराश कर खुद सहारनपुर पैसेन्जर में बैठकर यहां आयी थीं और पीछे-पीछे इस यात्री गेट तक हमें खींच लाई थी, एक कुली के सर पर सामान रखे अपनी नीली साड़ी को संभाले गज-गामिनी की तरह चली आरही थी और जब वह बिजली की रोशनी में आई और उसने अपने चन्द्रमुख को ऊपर उठाकर हम दोनों को प्रेम भरी दृष्टि से देखा तो हम जहाँ के तहाँ जमीन में गढ़ गये। ५५ वर्ष की मोटी ताजी

और झुर्रियोंदार चेहरे वाली एक बुढ़िया नीली साड़ी में लिपटी गेट से बाहर जाने वाले आदमियों की कतार में खड़ी थी।

कुछ देर तक हम दोनों एक दूसरे को इस तरह देखते रहे गोया एक दूसरे को खिजा रहे हों। उस समय यह भी पता नहीं चला कि हमारी गाड़ी देहरादून के लिए कब छूट गयी।

तीर्थ-यात्रा

यूँ तो संसार में भारतीय राजनैतिक दलों की तरह राम जाने कितनी शुभ-अशुभ यात्राएं हैं, परन्तु अपने राम जीवन में दो यात्राओं को ही यात्रा मानते हैं—एक तो श्मशान-यात्रा और दूसरी तीर्थ यात्रा। इसमें से पहली यात्रा का तो अभी मौका आया नहीं, क्योंकि वहाँ का मार्ग तो अभी चीनियों तथा अमरीकियों के लिये च्यांग-काई-शेक ने रिजर्व करा दिया है, उनसे छुट्टी मिले तो औरों को भी मौका मिले। यदि कभी एकाध वेकेन्सी हुई भी तो उसके लिये भारत के बेकार हर दम तैयार रहते हैं। हाँ, अलबत्ता तीर्थ यात्रा पर किसी ने ऐसी मोनो-पली नहीं ली है अतः अपने राम ने चुनाव-बुखार से बिगड़े अपने स्वास्थ्य को सुधारने के लिए—'रांड-सांड और सीढ़ी-सन्यासी' लोगों की महानगरी काशी की यात्रा का निश्चय कर डाला।

जैसे ही अपने राम ने बिस्तर लपेटा तो छींकते ही नाक कटी। मुन्ने की अम्मा ने मजिस्ट्रेट की भाँति अधिकार जताते हुए क्या, धौंस जमाते हुए कहा—"कहाँ जा रहे हो?"

"प्रभुदत्त ब्रह्मचारी को वोट डालने और डलवाने।"

"क्या मतलब?"

"मतलब साफ है, प्रभुदत्त को वोट देने का मतलब है शादी की दूसरी रजिस्ट्री और घरवाली के कहीं न भाग सकने की गारंटी।"

"नेहरूजी से तुम्हारी क्या दुश्मनी है ?"

"उनकी छाया भी किसी गृहस्थी के घर बुरी है।"

"नेहरूजी ने ही तुम्हें आज़ाद कराया है, यह क्यों भूलते हो, शर्म नहीं आती उनका विरोध करते ?"

"किसी लीडर का भाषण सुन लिया है क्या कहीं ? यहाँ तो घर बचाना ही कठिन हो रहा है उनके मारे ?"

"तो क्या वह घरों का भी राष्ट्रीयकरण कर रहे हैं ?"

"घरों का तो नहीं, पर घरवालियों का करने का इरादा है।"

"और बच्चे ?"

"उनके लिए खुलेंगे सरकारी यतीमखाने, जैसे हरामी संतानों के लिए चर्चिल की सरकार ने खुलवा रखे हैं।"

"क्योंजी, इसमें पुरुषों का क्या जाता है ?"

"पुरुषों का तो जाता आता कुछ नहीं; हाँ, अलबत्ता आता ही है कुछ। नेहरूजी तो कहते हैं कि घरवाली की घरवाली लो और उसके बाप का धन भी बाँट लो।"

"भाड़ में जाय ऐसा कोडबिल।"

"तो तुम भी चलो मेरे साथ, प्रभुदत्त की मदद करने।"

"अभी तो कठिन है, अगले चुनावों में देखूंगी, पर मेरे लिए कोई सस्ती चीज लेते लाना।"

"इलाहाबाद में लेखक और अमरूद दो ही चीज़ें सस्ती हैं, सो अमरूद यहां भी महंगे नहीं।"

राम-राम करके उससे उसी तरह पीछा छुड़ाया, जिस तरह टंडनजी ने कांग्रेसपद से। घर से स्टेशन का रास्ता नापते-नापते जब पहली मंजिल यानी स्टेशन पर पहुँचा तो देखने पर गाड़ी की हालत बद से बदतर दिखाई दी। आदमी इस तरह भर रहे थे, जैसे गधे किसी अस्तबल में बिना बांधे बन्द कर दिये जाते हैं। प्रत्येक यात्री अपने डिब्बे से अगले डिब्बे को

खाली बताकर छुट्टी पा लेता। मुझे भी कई यात्रियों ने यही राय दी।

खैर, किसी तरह दरवाज़े से घुसा और बिस्तर को भी घुसाया। अन्दर जाकर एक निगाह मैंने सीटों को अपनी जन्मभूमि मानने वाले सह-यात्रियों पर डाली। एक कोने में एक पंजाबी दम्पत्ति विराजमान थे और उनके पास कुछ जुलाहे बैठे थे जो अलीगढ़ जा रहे थे; दूसरी दो सीटें दो लालाओं और उनकी रेजगारी (बाल-बच्चों) ने सम्भाल रखी थीं। पिछली सीट पर एक पूर्वी तथा पश्चिमी संस्कृति का संयुक्त संस्करण बनी हुई एक महिला का कब्ज़ा था, कब्ज़ा इसलिए कह रहा हूं कि उन्होंने एक पुटलिया, जो डेढ़ आदमियों की जगह अकेली ही घेर रहीथी, अपने पास सटा रखी थी। उनके हावभाव से ऐसा लगता था कि वे अकेली यात्रा करने की आदत डालने लगी हैं। या हो सकता है वे भी उसी यात्रा पर निकली हों, जहां कि अपना मिशन जा रहा है।

अतः मैंने जरा गम्भीर बैल-सा मुंह बना कर उनकी ओर देखा तो उन्होंने पुटलियाकी ओर हाथ बढ़ाया। पुटलिया की ओर हाथ बढ़ाने का मतलब साफ था कि मुझे अपने पास निमन्त्रण देना और इस निमंत्रण को अस्वीकार करने का मतलब होता रात भर अपने पैरों पर अत्याचार करना या आते-जाते स्टेशनों पर दूसरों के सामानों को अपने ऊपर उतरवाते, डलवाते, फिकवाते नीद हराम करना; इसलिए मैंने चुपचाप भले आदमी की तरह उनका मूक-निमंत्रण स्वीकार कर लिया।

कुछ देर तक समय शाँति से कटा मुसाफिर आते रहे, लड़ते रहे और एक दूसरे को द्वंद्व युद्ध की चुनौती भी देते रहे। धीरे-धीरे रात आई। बिस्तर खुलने की तो जगह ही कहाँ थी; हां, एक दूसरे को तकिया बना कर आराम करने का ढोंग रचा जाने लगा। पंजाबी युग्म में भी सजीवता आयी। पहले औरत ने मर्द के कन्धे का सहारा लेकर हिन्दू-कोडबिल की अन्त्येष्टि की और उसके बाद जो नींद का झटका अंगड़ाई लेकर लिया तो सिर कंधे से सीने पर और सीने से गोद में। पैरों के

पास बैठे एक लाला दिल्ली के सदर बाजार से खरीदे बिसातखाने के सामान का हिसाब लगा रहे थे ।

डिब्बे की चढ़ी उस नींद का असर मेरी दोनों संस्कृतियों की समर्थिका पड़ोसिन पर भी हुआ तो उसने मुझ से अपनी जगह देने का किराया वसूल करना आरम्भ कर दिया—यानी उनका सिर मेरे कन्धे पर था । वह सिर मेरे ऊपर ऐसा लग रहा था मानों डिब्बे के मुसाफिरों ने मिलकर लानत की टोकरी मेरे कंधों पर रखदी हो । पर करता क्या ? साँप के गले में तो छछूंदरी फंस रही थी ।

छछूंदरी कुछ सो रही थी, कुछ जाग रही थी, कुछ नींद की खुमारी में थी । मुझ पर क्या बीत रही थी न पूछिये और उधर पंजाबी युग्म मेरा जी जला रहा था । वे मुंह से तो मौन थे, पर उनके पैर प्रतिक्रियावादियों की तरह अशांति पैदा कर रहे थे । वह कभी मेरे पंजे से टक्कर लेते तो कभी नाखून घुसा देते । इसी तरह रात भर बैठने की जगह का किराया देता रहा । नींद आना तो दूर रहा, बैठना भी मुश्किल हो गया । लगभग चार बजे भगवान को मुझ पर दया आयी । उन्होंने सोचा होगा—भक्त रात भर नींद से परेशान रहा है; अब इसका कल्याण किया जाय । बस कल्याण हुआ । देवीजी उठीं और किसी के बिस्तर पर, किसी की कमर पर और किसी के सिर पर पाँव रखती हुई शौचालय में घुस गयीं । उनके जाने पर एक स्टेशन आया तो भगवान ने यहाँ से एक सवारी खिसकाई और मैं तब ज़रा सा पसर कर बैठ गया ।

छछूंदरी बाई जब लौट कर आईं तो जगह का फैलाव कुछ बढ़ गया था, पर मेरी कृपा से वह बढ़ा हुआ फैलाव भी उनके लिए तो पहले से भी कम था । इस बार मैंने किराया देना उचित न समझा । मौन आँदोलन से प्राप्त स्वराज्य में अब किसी का क्या अधिकार ? मैंने सोने की चेष्टा प्रकट की तो देवीजी ने भी उदारता प्रदर्शित की । उस उदारता का सदुपयोग किया गया । जब मैं सो कर उठा तो सात बज चुके थे

सोना क्या था, आंखों का जहर निकालना था तब तक सभी पुराने यात्री गाड़ी से उतर चुके थे। हां उनकी जगह कुछ नये यात्री अवश्य आ गये थे, जो हम दोनों को मियां-बीबी ही समझने लगे। इस पर न तो मेरी सहयात्रिणी ने कोई आपत्ति प्रकट की और न मैंने ही। मैं तो उन्हें गाड़ी की घरवाली समझकर उनके साथ वैसा ही व्यवहार भी करने लगा और वे भी........

दिन के दस बजे गाड़ी बनारस पहुँची। छछूंदरी बाई भी वहीं उतरीं। हमारा साथ गाड़ी में तो निभा ही, बाहर भी निभ गया। उनके साथ रहने से एक लाभ यह हुआ कि बनारस के भयानक पंडों के हाथों से मैं बच गया, वरना कौन जाने मैं भी नर्सरी गार्डन के परिवार का सदस्य बना दिया जाता।

तीसरे दिन काशी देखी, पेट भर कर देखी। काशी में आकर मुक्ति चाहने वालों का मुक्ति-पथ भी देखा; सुनकर क्या कीजिएगा, पैसे फूंकिए और देख आइये। पर इस बीच हमारी छछूंदरीबाई का साथ हम से छूट गया। अस्तु,

मतलब की बात तो इतनी है कि अपने राम एक अखबार के दफ्तर में गये और जाना भी था। जाना यह देखने था कि पुस्तक के टाइटिल पेज की तरह ही सुन्दर इनका कार्यालय या है दिल्ली के कबाड़ी बाजार की दुकानों से काम्पीटीशन करते है। दूसरे अपने लेख भी वहाँ बहुत दिनों से उधार ही छप रहे थे। अन्दर सम्पादक जी को "एंगेज्ड" देखकर अपने राम तो बाहर ही बैठ गये। एक कवि महोदय अंदर कह रहे थे—"आपने मेरी कविता को तो फांसी ही दे दी। क्या लिखा और क्या छपा ? मेरा शीर्षक तो था "भर रहा था धीरे धीरे स्वप्न में सिंदूर में "और आप छापते हैं, "भर रहा था धीरे धीरे स्वप्न में बन्दूक में।" बेचारे संपादक ने क्षमा-याचना करके अगले अंक में "भूल-सुधार" कर इसे ठीक कर देने का वचन दिया तब कहीं वे उठकर चले।

वे तो बाहर निकले ही थे कि एक २८–३० साल की चिर कुमारी या अर्द्ध कुमारी जी तेजी से बिना इधर-उधर देखे आयीं। सभ्यता का नियम है "लेडीज फर्स्ट" और इसलिए मैं बैठा रहा वे भी जाकर संपादक पर बिगड़ने लगीं—बिगड़ने का कारण कम्पोज़ीटर की कृपा ही थी। उनकी कविता की एक पंक्ति थी—"माँग मेरी भर चुकी है और आशाएं शिथिल।" पर कम्पोज़ीटर महोदय ने उसका संशोधित रूप—"टाँग मेरी कट चुकी है और आशाएं बिकल", मुद्रित किया। दूसरी पंक्ति थी— "प्यार की मनुहार से थरथराता गात रे" "आज ओलों की झड़ी बरसात रे". पर कम्पोजीटर की बलात्कारी प्रवृत्ति से इसमें संशोधन इस प्रकार हुआ—"यार के सत्कार से कटकटाता हाथ रे" "आज ओलों से लड़ी बरसात रे।" कंपोजीटर महोदय भी सम्पादक जी की में कचहरी में बुलाये गये। वे चिर कुमारी जी बारी-बारी से दोनों पर वार कर रही थीं। किसी तरह वह पत्र की अकाल मृत्यु की कामना करती हुई सुदामा के सगे भाई गरीब संपादक का पीछा छोड़ कर बाहर आयीं। अपनी जब उनसे आंखें चार हुईं तो बात और ही थी।

"ओह, छछूंदरी बाई, आप यहां कैसे" ? मैंने कहा।

"कविता के सत्यानाशियों से मिलने" और आप ?

"कविता छपवाने।"

"कविता भी लिखते हैं आप ?"

"सीख रहा हूँ।"

"यहाँ सिखाई नहीं जाती।"

मैंने कुछ कहना उचित नहीं समझा। इस पर बोलीं—"देखिये, आप मुझे छछूंदरीबाई न कहा करें, मेरा नाम तो मिस सुनैना है।"

"होगा, पर आपको मिस कहते जरा...........मैंने तो प्यार से नाम रखा और आप हमारे प्यार को........?"

इस पर वे कुछ न बोलीं, कार्यालय में जाने का विचार त्याग कर उनके साथ ही हम चले आये, लगभग ११ घण्टों के वियोग के पश्चात् मिले थे हम लोग.... ११ घण्टे बाद ही फिर बिछड़ गये । सुना है सुनैना अब किसी महिला-पत्र की सम्पादिका हैं ।

मकान की तलाश

शहर में खोजने से रोजगार तो मिल सकता है, परन्तु मकान मिलना कठिन है। जिसे शहर में रहने के लिए यदि एक गुसलखाना भी मिल गया तो समझो उसे सब कुछ मिल गया और यदि कहीं भाग्य से दिल्ली में मकान मिल गया तब तो कुछ पूछिये ही नहीं।

अपने एक मित्र हरीश मिले आज रास्ते में। देखकर खड़े हो गये। हमने समझा कि एम्पलायमेंट एक्सचेंज से आ रहे होंगे, क्योंकि जिस पत्रिका में यह सम्पादक थे दैव कोप से वह अकाल मृत्यु को प्राप्त हो गई और इन्हें अधिकार पूर्ण जनसेवा से तो छुटकारा दिला ही गई साथ ही सड़क घिसाई के सहारे स्वास्थ्य सुधार का समय भी दिला गई।

इनके ठलुवे घूमने का गम हमें इसलिये अधिक नहीं था कि भगवान् की कृपा से यह बीबी की दुनियां से अभी दूर थे। किसी सौभाग्यवती की जन्मकुण्डली का मिलान अभी तक इनकी जन्मकुण्डली से नहीं हो पाया था। यूँ आजकल लोगों के दिमागों की यह विचारधारा है कि डाक्टर, ऐक्टर और ऐडीटर इनकी शादियाँ काम-कला के प्रदर्शन के समय ही हुआ करती हैं, परन्तु गरीब हरीश को इतना मौका ही न मिला कि किसी अनाड़ी लड़की को लेखिका बनाते-बनाते पत्नी बना लेते।

हाँ, तो कहने का मतलब यह है कि हरीश अकेले थे, बिल्कुल

अकेले। घर में मां-बाप कभी रहे होंगे परन्तु वह इनके होश सँभालने से पहले ही अपने होश गँवाकर इस दुनिया से कूच कर कर गये और यह हजरत इधर-उधर टक्करें खा-खूकर पढ़ लिखकर सम्पादक बन गये।

नौकरी के दिनों में हरीश होटल में खाते, दिन में जिस मेज पर लिखते रात में उसी पर लेट लगाते। नौकरी गई तो आशियाना भी गया। अब मकान की खोज की पड़ी। सामने आये तो हँसे।

"कहाँ से आ रहे हो?" मैंने पूछा।

"मकान की खोज में गया था ज़रा!" हरीश बोले।

"फिर मिला?"

"कहाँ मिलता है। जहाँ जाता हूँ वहीं कुछ न कुछ हो जाता है।"

"आखिर?"

"आज दो-तीन जगह गया। पहली जगह जब पहुँचा तो मकान मालिक ने सर से पैर तक मुझे गौर से देखा, लगता था कि शायद उसे मेरे आदमी होने में कुछ शक है। या वह मुझे किसी खास नस्ल का, खास देश का आदमी समझ रहा है।"

कुछ देर देखकर बोला—

"तुम्हारा नाम क्या है मिस्टर?"

"हरीश।"

"तुम्हारे बाप का नाम?"

"वह तो मर गये?"

"नाम तो कुछ छोड़ ही गये होंगे?"

"नाम क्या वह तो बस मुझे ही छोड़ गये हैं।"

"कहां के रहने वाले हो?"

"यू० पी० का हूँ।"

"जहां का सुल्ताना डाकू था।"

"जी, जहां विदुर का निवास स्थान था और आधुनिक काल में कुछ

वर्ष पहले पं० पद्मसिंह शर्मा रहा करते थे।"

"वह कथावाचक तो नहीं जो मालीवाड़े में बरसात के दिनों में रामायण की कथा किया करते थे।"

"जी, नहीं वह तो अखबारों में रामायण लिखा करते थे।"

"तुलसीकृत रामायण स्यात् उन्होंने ही लिखी है।"

मैंने भी पीछा छुड़ाने को कह दिया—"जी हां!"

लालाजी बोले—

"हमारे यहां तो कोई मकान है नहीं जी, सामने की गली में चले जाओ वहां से बांयें मोड़ को चले जाना, आपको एक पतली-सी गली मिलेगी। उसमें दस क़दम जाकर दाहिनी ओर घूम जाना, फिर दो मकान छोड़कर बांयीं ओर की गली में जाकर म्युनिसिपैलिटी के नल के पास वाली गली में सीधे चले जाना और दस-बारह कदम जाने पर ही एक ऊँचा सा मकान मिलेगा जानकीबाई का करके पूछ लेना और मेरा नाम बता देना कि तुम्हारे भतीजे खचेढ़ूमल ने भेजा है।"

"तब तो अच्छा यह रहेगा कि पहले कमेटी से उस स्थान का नकशा ले आऊँ, वरना पूछते पूछते पहुंचना तो आसान नजर आता नहीं।"

"अरे क्या बच्चों वाली बात करते हो। उन्हें तमाम मुहल्ला जानता है। बच्चे-बूढ़े सब जानते हैं जिससे भी पूछोगे वही बता देगा।"

अच्छाजी कहकर मैं चल दिया। बुढ़िया वास्तव में उतनी ही प्रसिद्ध निकली। जिससे पूछता वही बता देता, दाहिने को जाना फिर बाँयें को जाना, बिजली का खम्भा याद रखना, म्युनिसिपैलिटी के नल के पास घूम जाना।

गिरते-पड़ते, पूछते-पूछते किसी तरह बुढ़िया जानकी के मकान के पास पहुंच ही गया। बुढ़िया को आवाज़ दी, बुढ़िया बाहर आई।

"कहाँ से आये हो? किसके लड़के हो?" बुढ़िया ने प्रश्न किये।

लाला खचेड़ूमल का हवाला देते हुए मैंने मकान की बात कही।

"क्या उमर है तुम्हारी ?"

"तीस साल !"

"बीबी के कितने बच्चे हैं ?"

"एक भी नहीं !"

"शादी हुए कितने दिन हो गये ?"

"अभी हुई ही नहीं !"

"मेरे यहाँ लफंगों को मकान नहीं है। कच्ची-क्वारी बहू-बेटियों का घर है और कहीं देखो।"

"क्या नौकरी मिलने के बाद से अभी तक तुम्हें मकान मिला ही नहीं ?" उसने पूछा।

"नहीं यह बात तो नहीं। मकान मिल गया था और वह अभी तक है भी; मगर वह एक समझौते के साथ मिला हुआ है, यदि समझौता टूट गया तो मकान गया।"

"वह कैसे मिला और समझौता कैसा ?"

उसकी कहानी भी सुनो—

इसी तरह मैंने पहले भी मकान के लिये चक्कर काटे थे; और कितने ही दिन धक्के खाने के बाद एक रहमदिल लाला से भेट हुई और उन्होंने मुझे मकान दिया। मेरे और मकान मालिक के बीच एक मध्यस्थ था। उसी की कृपा से वह मकान मुझे मिला था। मेरे साथ यह समझौता हुआ था कि दिन को मकान मेरा, खाना बना सकता हूँ, खा सकता हूं, लेट लगा सकता हूँ; परन्तु ९ बजे रात से सवेरे के ४ बजे तक उस पर ताला मकान मालिक का रहेगा। जब तक मैं शादी न कर लूं रात उस पवित्र घर में व्यतीत नहीं कर सकता। तो अब वह समझौता टूटने और मकान छूटने में देर नहीं।

प्रेम-प्रैक्टिस

संसार में भगवान् के घर से भाग कर आने वाला प्रत्येक मनुष्य, बालिग होने के पैमाने में पूरा उतरने से पहले ही कहीं-न-कहीं कोई न कोई प्रैक्टिस आरम्भ कर देता है। डाक्टर मरीजों को मारने या उबारने की प्रैक्टिस, नेता भाषण देने और व्यापारी चोर बाजारी की प्रैक्टिस की ओर कदम बढ़ाते हैं।

खाने-कमाने की इस प्रैक्टिस के अतिरिक्त अन्य प्रैक्टिस केवल मन बहलाव और आदतों से मजबूर होकर करनी पड़ती हैं; गो कि इन प्रैक्टिसों में कभी-कभी आदमी को बड़े घरों और चुड़ैलों तक की चप्पलों का मुंह देखना भी पड़ता है। अपनी इस भूमिका के बाद निरंजन आगे बोले—

हाँ, तो जब मेरी प्रेम करने की आदत वर्तमान भ्रष्टाचार की तरह बढ़ती गयी तो वह "प्रेम-प्रेक्टिस" की सूरत में बदल गई।

प्रेक्टिस का क्षेत्र था एक गाँव और वह गाँव भी भोगाँव जैसे समझदार ग्रामों का अग्रणी माना जाता था। अब आप ही बताइये कि वहां ऐसी प्रेक्टिस क्या खाक चलती।

निदान मैंने एक दिन गांव को नवाब जूनागढ़ की तरह छोड़ दिया और प्रेम के तत्व-वेत्ता की समाधि वाले शहर दिल्ली में चला आया।

भगवान् की दया से उस समय मकान मालिकों की मस्तिष्क की

उर्वरा भूमि में पगड़ी रूपी पौदा पैदा करने की क्षमता नहीं थी और वह उस समय हर एक किरायेदार की तलाश इसी तरह किया करते थे जैसे पुलिस के सिपाही कपड़े के दूकानदार की कन्ट्रोल के दिनों में करते थे। इसीलिये ढाईं रुपये, ढाई आने में ४×४ वर्ग फुट का एक कमरा जिसका बिजली का खर्चा लालाजी के जिम्मे ठहरा था, उसी दिन मिल गया।

वैसे मुझे मेरे इस विद्या के गुरू ने, जो कलकत्ते-बम्बई में भी कई बार मौसमी और संतरे बेचकर बिना टिकिट के घर आता था, कुछ नुक्ते की बातें बता दी थीं और यह भी समझा दिया था कि माँगते-माँगते ही आदमी फकीर हो जाता है, बस बढ़ते चले जाना।

बस, अगले दिन ही मैंने अपनी प्रैक्टिस आरम्भ कर दी। एक कालेज की बछिया, बछिया क्या थोड़ी-थोड़ी गाय ही समझिए, साइकिल पर बिना पैडिल मारे ही उड़ी जा रही थी। एक-दो-तीन, नीचे मैं, ऊपर साइकिल और हम दोनों के ऊपर वह! अगले मडगार्ड की कृपा से मेरा थोड़ा सा कान कट गया था और लोगों ने इस मुसीबत से मेरा उद्धार किया था। बछिया ने हमदर्दी दिखाई, माफी मांगी और अपना रुमाल मेरे कनकटे हिस्से पर लपेट दिया।

उस दिन बस इतनी प्रैक्टिस से ही घर लौट आया। अगले दिन बुखार चढ़ा रहा, तीसरे दिन बुखार हल्का पड़ने पर मेरी दशा उस शुद्ध-बुद्धि वाले शिकारपुरी जाट-सी होगई जिसने एक बार एक मौलवी को एक मस्जिद में नमाज को अन्तिम दण्डवत करते हुए ढकेल दिया था और बुड्ढे मौलवी ने भैंसासुर जाट के साक्षात् करते ही उपहार स्वरूप एक चवन्नी पारितोषिक दे दी थी।

वह चवन्नी उस जाट को जुम्मा-मस्जिद में फिर ले गयी जहां नमाजियों का काफला नमाज पढ़ रहा था और जाट उनके अंतिम दंडवत के अवसर की प्रतीक्षा में था, वह अवसर भी आया जब नमाजियों को अंतिम दण्डवत करनी थी और जाट को अपनी आमदनी करनी थी।

दोनों काम आरम्भ हुए, जैसे ही दो-चार नमाजी लोग लोटन कबूतर बने तैसे ही शेष ने दण्डवत छोड़कर जाट के शरीर की सेवा-सुश्रुषा आरम्भ करदी और उस सेवा का क्रम तब तक जारी रहा जब तक जाट के होश हिरन न हो गये !

बस वह रुमाल ही मुझे भी फिर सड़क पर सर्कस कराने के लिये ले चला और इसके बाद बछिया की साइकिल से न टकराकर एक कटिया से जा टकराया। आशा तो थी यह कि यहाँ रुमाल के अलावा शायद और कुछ भी मिल जाय, लेकिन उस भैंस की बच्ची ने—

"लात घूंसा कमर मध्ये, चटखनं मुख भंजनम् ।
चरणदासी शीष मध्ये, बारबार धड़ाधड़म् ॥"

आरम्भ कर दिया और बाद में कुछ नासमझ तमाशबीनों ने एक बेबकूफ पुलिस वाले के हवाले भी कर दिया। उसके भी दो-चार हाथ खाये। इच्छा तो नहीं थी क्योंकि उस अफ्रीकन वंशज के हाथ जरा कैंड़े थे लेकिन और चारा भी क्या था ?

उसके बाद तब से कई दिनों तक कम्युनिस्ट लीडरों की तरह अण्डर-ग्राउण्ड रहा लेकिन कब तक आखिर ? फिर मैदान में उतरा।

इस बार ऐसा हुआ कि पिटाई की थकान उतारने और मन की लगाम को फिर उसी रास्ते पर मोड़ने के लिए 'बरसात' फिल्म को देखने चला गया। वहीं एक भाई साहब को जरा देखभाल करके भला आदमी समझकर चाय-वाय पिलाकर भाई बना लिया। कुछ दिन तक तो मैं यूँ ही रहा लापता। लेकिन बाद में भाई साहब के घर का, "आठ पहर नौकरी करे, भीख मांग कर खाय" जैसा का नौकर बन गया। वहाँ प्रैक्टिस के भी चलने की आशा थी क्योंकि पिटाई-सिटाई जैसी वाहियात बातों की नौबत अभी तक नहीं आई थी।

रहते-सहते दो हफ्ते में शायद एकाध दिन कम रहा होगा कि एक दिन अपने रिश्ते का प्रदर्शन थोड़ा-सा ही आरम्भ किया था कि बस यही

कहते हुए वहाँ से निकलना पड़ा "बहुत बे आबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले ?" उस कूचे के चीमटे का स्मारक अभी तक मेरे मुंह पर है।

कुछ दिन फिर यों ही बीते। अपने पिटे हुए मुख और छिपे हुए दिल को उठाकर शाम को किसी पार्क में जा पटकता।

एक दिन मेरे ऊपर वाला कमरा भी ईश्वर की कृपा से आबाद हुआ और उसे आबाद कराने वाले थे, शादी की किसी अदालत से रजिस्ट्री कराये हुए एक नौजवान और नवयुवती जिसे मैंने पहली बार छत पर गीली धोती सुखाने जाते समय देखा था और जिसने मुझे उस समय धोती की ओर ध्यान दिलाते हुए कहा था—

"बाँध दीजिए भाई साहब, कहीं इसे बन्दर न ले जायँ, तीन दिनों में बन्दरों ने हमारी दो धोतियाँ झीड़बत्ती कर डालीं।"

मैंने कहा—"यदि आपकी दया दृष्टि रही तो विश्वास है कि बंदर-आक्रमण निष्फल हो जायगा।"

मैं चला आया। शाम को पता चला कि बन्दर आये थे, धोती ले चले थे और उन पर प्रत्याक्रमण कर किसी तरह उन्होंने इन से छीना है।

धीरे-धीरे धोती सूखती रही, दिल हरा होता रहा, प्रैक्टिस आरम्भ हो गई।

एक दिन वह किसी पड़ौसिन से जिह्वाभ्यास कर रही थीं और उन की साड़ी से कपड़ा फाड़ने की कला का अभ्यास बन्दर कर रहा था, वह मैंने छुड़ादी। बस उसी दिन से उनकी कृपा और बढ़ गई। तब दिल में बैठे बिठाये एक दिन ऐसी आई क्यों न अपने हृदय के उद्गारों को एक कागज पर लिखकर उन तक पहुंचादूं। निदान पत्र लिख दिया—

प्रिय कामिनी,

आपने उस दिन मेरी धोती को बन्दरों से फड़वाने से तो बचा लिया,लेकिन दिल को फटने से नहीं बचाया। मैं इस समय तुम्हारी तुलना कभी चन्द्रमा से, कभी मंगल तारे से करते करते शुक्र तारे तक

से कर डालता हूँ और प्रार्थना करता रहता हूँ कि मेरी धोती को तुम्हीं सदा बन्दरों से और बंदरियों से इसी तरह बचाती रहोगी। अभी शायद तुम प्रेम विद्या में कच्ची हो, इसीलिए अपने घर वाले के बाहर जाने पर प्रेम विद्यालय यानी सिनेमा, मेरे साथ आज चलना और रोज मेरे यहाँ से इलाहाबाद से प्रेम-प्रकाश प्रचारित कहानी मासिक की कापियों को अभ्यास के लिए उठा लाया करना। मैंने भी यह विद्या इन्हीं से सीखी थी। बस और क्या लिखूं, कोरा कागज बदकिस्मती से आज कोई रहा नहीं, इसके ही २-४ पृष्ठ पढ़कर उत्तर जल्दी दे देना और चुपके से मेरे कमरे में डाल देना।

तुम्हारा
नीचेवाला

दूसरे दिन उत्तर प्राप्त हो गया लिखावट जरा सख्त हाथों की थी यह उस समय में न देख सका उसका वही लकड़बग्घा सदृश्य पति किसी समय दिन में ही आ टपका था और उस मुर्गी की बच्ची ने आते ही प्रेम-पत्र उसके हवाले कर दिया था। तभी षडयंत्र करके मुझे फाँसने को पत्र लिखा था—

'मेरे प्यारे,

तुम्हारा पत्र मिला, पढ़ कर मेरी दशा बिल्कुल लैला से भी दो कदम आगे बढ़ गयी। बस इतना ही समझ लो, आज खाना यहीं खाना और फिर सिनेमा दिखाना। ७ बज कर ११ मिनट पर अपने दिल को साथ लेकर आना।

—आपकी ही
कामिनी।

नियत समय से पहले ही मैं पहुंचा। भोजन तैयार था। एक थाल में आगे रख दिया गया। पहला टुकड़ा अभी मेरे हाथ में ही था कि अचानक वज्र प्रहार हुआ। एक करारा घूंसा मेरी कमर पर पड़ा। इससे पहले कि मैं आक्रमणकारी को देखूं, मेरी एक हाथ से गरदन

पकड़ कर किसी ने उठाई। उठाने वाला था उसका घरवाला। फिर मेरी कनपकड़ी के बाद उसने कहा—

'क्यों बे, उल्लू के पट्ठे, तेरी इतनी हिम्मत।'

लेकिन मेरी हिम्मत कभी की मेरा साथ छोड़ चुकी थी। तू चल, मैं चल, एक मेला-सा उस मकान में लगा हुआ था।

मकान मालिक की आज्ञा हो चुकी थी कि मैं आज ही यहां से चलता फिरता नजर आऊं।

सामान बांधा और स्टेशन पर आया। गाड़ी थोड़ी देर बाद इस तरह भरनी शुरू हुई मानों दिल्ली पर बम–वर्षा होगी, 'भागना हो तो भागो' सिद्धान्त की तरह ऐसा लगता था कि गोया सारी दिल्ली आज इसी गाड़ी से भागेगी।

स्थान पर अनुचित अधिकार के हस्तक्षेप के आरोप से बचने के लिए मैं एक प्राचीन पद्धति की अनुकरणशील महिला से जरा सटकर बैठ गया और उसी बैठा-उठी में मेरे एक पैर की भिड़न्त उनके पैर से हो गयी। बस उसी समय बिना इच्छा के ही 'दिन के अंधे' आदि की अनेक उपाधियाँ उनसे लेनी पड़ीं।

अब यहाँ फिर गांव में आ पड़ा हूँ, दिल्ली जाने की इच्छा होती तो है, लेकिन सुनता हूँ कि आजकल मकान–मालिकों और किरायेदारों में इजरायल और मिस्र जैसे संबंध हैं। इसीलिये वह किरायेदार से ऐसे ही बिदकते हैं जैसे छतरी देख कर बाजार में मरखना बैल। देखिए, कब तक प्रेम–प्रैक्टिस का यही हाल रहता है।

देवीजी ने कुत्ता पाला........

चपला चमक रही थी, बादल बरस रहे थे, सूर्य भगवान् राम जानें कहाँ दुबके पड़े थे। शहर अंधेरी रात के आवरण में आ चुका था। नगर के सारे जीवधारी अपने घर-घोंसलों में दुबक गये थे।

मैं भीगते हुए सड़क पर दौड़ लगा रहा था, ठीक उसी चोर की तरह जिसके पीछे पुलिस वाले भागे आ रहे हों।

सामने मनोहर की कोठी थी। जैसे-जैसे कोठी मेरी ओर बढ़ती या मैं उसकी ओर बढ़ता, तैसे-तैसे ही दाँतों का किटकिटाना, हिम्मत का हिनहिनाना और दिलका सीने से निकलने के लिये रस्से तुड़ाना शाँत होता जा रहा था।

अस्तु, वह आशाका क्षरण भीषरण भागदौड़ के बाद आ ही गया जब कि मैं एकदम कोठी का दरवाजा ढकेलकर उसके अन्दर अपने पैरोंको लेकर दाखिल हो गया।

अन्दर मनोहर एक कुर्सी की करवट में उकडूं बैठे थे, निगाह उनकी सामने मक्खियों को हलाल करनेवाली छिपकली की हचलल पर थी। यह पता नहीं कि वह इस समय मैस्मरेजम का अभ्यास कर रहे थे या छिपकली की गति अवरुद्ध करने का उनका इरादा था या मुस्लिम-पद्धति के अनुसार उन्होंने पूजा का अभ्यास शुरू किया था।

पूजा के अभ्यास का ख्याल तो अपना ख्याल ही रहा क्योंकि सामने उनके कोई मूर्ति थी नहीं और छिपकली को भगवान् का प्रतीक वह मान लेंगे, ऐसी आशा नहीं थी तथा संध्याका न तो समय ही था और न उन्होंने आचमनके लिये ही लोटा जल का भरकर रखा था।

फिर भी ऐसी यौगिक दशा में किसी भी मनुष्य को छूना या छेड़ना बुद्धि की विशालता का प्रतीक नहीं माना जा सकता। परन्तु उस समय अपने पास बुद्धि थी कि नहीं, इसका भी हमें पता नहीं। हाँ, बाकी सारे अंग शरीर में ठीक उसी तरह अनिच्छा से लगे हुए थे, जिस तरह डोमिनियन राष्ट्र अपनी इच्छा की हत्या करके भी अभी तक अपने प्राचीन आकाओं की गद्दी में कंधा लगाये हुए हैं।

अपना हाल उस समय बिल्कुल उस साँप जैसा था जिसके मुँह में छंछूदरी फँसी हो, न छेड़ते चैन न छोड़ते चैन। गनीमत यही थी कि अपने गले में छंछूदरी न उलझ कर ठंड घुसी थी जिससे अन्धा होने का तो डर नहीं था परन्तु गले में अन्तिम फंदा लग जाने का डर जरूर था।

इसलिये हमने इसी डर से कि कहीं दिल दगा न दे जाय और हमारे इस चिकने-चुपड़े नौ दर्वाजे वाले मकान से नालायक किरायेदार की तरह से निकल न जाये हमने मनोहर की समाधि भंग करने का ध्रुव निश्चय करके अपनी छोटी उँगली उसकी गर्दन से ज़रा सी छुआ दी।

उँगली के छुआने का असर उस पर बिजली के छुआने की तरह हुआ। उसने समझा कि शायद कोई सांप गर्दन के रास्ते उसकी कमर की ओर आने की तैयारी करा रहा हो।

मनोहर चौंके, उछले और एक दम भागने के लिये खड़े हो गये मगर जब अपने पिछवाड़े हमें खड़े देखा तो अक्ल ठीक हुई और दाँत दिखा दिये।

"भगतजी क्या सोच रहे थे?"

"सर सन्धानकी बाबत विचार कर रहा था।"

"इस विद्या के आचार्य तो राजस्थानके भील भाई हैं !"

"इसीलिये यह विचार छोड़ दिया और कुछ करूँगा ?"

"आखिर किस स्वार्थ की सिद्धि के लिए यह योगाभ्यास चला है ?"

"एक नागिन से बचाव के लिये ?"

"क्या तुम्हारी कोठी में है बिल उसका ?"

"सामने वाली कोठी में है ?"

"तब शहर के अन्देशे से काज़ीजी तुम क्यों दुबले हो रहे हो ?"

"इसलिये कि नागिनका कोपभाजन शहर नहीं काज़ीजी ही होंगे।"

"तो क्या बराबरवालों ने तुम्हें कटवाने को पाल रखा है ?"

'नहीं, उन्हें तो शायद यह भी पता नहीं कि नागिन काटना जानती भी है या नहीं।' पहले कपड़े बदल लो तब बताऊँगा।

मैंने कपड़े बदले। चाय आई और नागिन प्रकरण गतांक से आगे फिर आरम्भ हुआ—

'तूने यह कैसे समझा कि वह तुझे काट लेगी ?'

'अरे तुझे यकीन ही नहीं आता, जब मुझे देखती है खड़ी हो जाती है, गुर्राती है, आंखें दिखाती है ?'

'गुर्राती है, आँखें दिखाती है, खड़ी होती है, कोई दिमाग का पुर्जा तो ढीला नहीं हो गया तेरा ?'

'रोज मस्तिष्क की मशीन में मक्खन देता हूँ ?'

'मशीन की भैंस का देता है न ?'

'अरे घर बांध रखी है चार पैर की बुद्धू-ब्राण्ड ?'

'तब आँखों में खराबी आ गई होगी ?'

"गलत बात है, दूर का आदमी बिल्कुल अन्धा दिखाई देता है।"

"तब फिर क्या बात है ?"

"बात क्या वह मुझे रोज कत्ता बनाती है !"

"यह ठीक रही। कामरूप देश की नागिन तो बकरा या तोता ही बनाती थीं यह कुत्ता बनानेवाली कौन लोक से आई बेटा ?"

"यह तो आजकल मुझे भी पता नहीं।"

"कभी तुझे पागल कुत्ते ने तो नही काटा है बचपन में, ज़रा अपने पिताजी से लखनऊ से आनेपर पूछना ?"

"नहीं काटा है !"

"तब तेरे जैसे बुद्धि-विशारदों के सुधार का विद्यालय आगरे में है, जहां नि:शुल्क पागल भर्ती किये जाते हैं।"

"अरे तुझे यकीन ही नहीं आता और यहाँ शनैः शनैः मेरी योनि तक कुत्ता योनि में बदली जा रही है।"

"नागिन है, काटेगी, कुत्ता बनाती है, क्या तुझे कोई अक्ल विहीन इन्सान नहीं मानेगा ?"

"नहीं, वह असिल में है तो लड़की ही परन्तु है नागिन से भी भयानक !"

"तो क्या उसे भी काटा है कुत्ते ने कभी ?"

"अरे नहीं बछिया के ताऊ, तेरा वही हिसाब है 'जितनी देर बीन बजाई, भैंस खड़ी पगुराई।' तेरी तो शायद अक्ल हिरन हो गई है।"

"अच्छा कह !"

"मेरा नाम मनोहर तू जानता ही है, और उसका नाम है मालती ?"

"अब समझा और खूब समझा। गोया तुम्हारे जोड़ा मिलाने का दलाल बनकर दोनों के माँ-बाप के पास जाऊं।"

"अरे वाहरे अरस्तू की औलाद, पहले सुन तो ले फैसला बाद में ही करना।"

"कह डाल ?"

"उसने पाल रखा है एक कुत्ता ?"

"और कौन-कौन से जानवर पाल रखे हैं उसने ?"

"अबे उसका चिड़िया घर देखने पीछे जाना, पहले लगाम तो दे ले जुबान को।"

"दे ली, ले कह ?"

"हां, तो उसने अपने कुत्ते का नाम मनोहर ही रखा है ?"

"तो इसमें तेरे बाप का क्या जाता है ?"

"अरे आता-जाता तो खैर कुछ नहीं पर जैसे ही मैं बाहर धूप में जाकर बैठता हूं तैसे ही वह अपने कुत्ते को लाती है और 'मनोहर के बच्चे, नालायक, गधे' आदि की उपाधियों से लादकर उसकी पिटाई करती है।"

"तब क्या तुझे कुत्ते के भाग्य से ईर्ष्या है ?"

"तो क्या मैं एक लड़की का कुत्ता बनने के ही योग्य हूँ ?"

"यह तो कोई ज्योतिषी बतायेगा, तेरे हाथ में किसी का कुत्ता बनने की रेखा है या नहीं।"

"अरे शादी के मार लाठी। मैं तो यह चाहता हूँ मेरा नाम लेकर कुत्ते को न पीटा करे।"

बात सचमुच विकट थी, बेढब भी थी। इसका मतलब निकालना कि आखिर उसे मनोहर से या कुत्ते से क्या शत्रुता है नारी-विज्ञान के प्रोफेसरों का ही काम था और हम दोनों अभी तक भी लाल दुपट्टे से मरखने बैल की तरह यों ही भड़कते थे।

फिर भी साहब उपाय तो खोजना ही था। मैं न खोजता तो और कौन खोजता। उसका सिवाय माँ-बाप के और सगा मेरे अलावा था ही कौन। अतः मैंने जरा अपने पीछे की खिड़की खुलवाई और अपनी घुटी हुई खोपड़ी जरा हवा में बढ़ाई तब कहीं बहुत देर के बाद भगवान् की बताई दवाई छींकने वाली दुनाली के मार्ग से दिमाग में आई।

"मनोहर, आ गई !" मैंने कहा।

"अरे बारिश में भी !"

"अरे वह नहीं रोग की दवाई हाथ आ गई ।"

"बता ।"

"उसने कुत्ता पाला है और उसकी पिटाई तुझे दिखाकर करती है ?"

"हाँ ?"

"तू एक कुतिया पाल ले और मालती नाम धर ले ।"

"अच्छा समझ लो पाल ली ।"

"तब जब वह कुत्ते की पिटाई करे, तू कुतिया की मरम्मत शुरू कर दे ।" एक सप्ताह बाद मुझे मर्ज का हाल बताना तभी दवाई में रद्दोबदल होगी ।

ठीक एक सप्ताह बाद मैं अपने मरीज की दशा देखने पहुंचा ।

"क्या हाल है मनोहर ?"

"ठीक है, कुतिया-कुत्ते दोनों पिट रहे हैं ।"

"कोई नई बात तो नहीं जरा ब्योरेवार बताओ ।"

पहले दिन मेरे बैठते ही वह कुत्ता लाई और उसने उसकी पिटाई शुरू की । कुत्ता उसके हाथ से छूटकर मेरे पास भाग आया उसने फिर बुला लिया ।

कुत्ते के जाने पर उसने फिर मारा और उससे कहा—"यह क्या अपने भाई के पास सिफारिश लेकर गया था ।"

मुझे बहुत गुस्सा आया, एक हाथ मूँछों पर एक हाथ जेब पर—क्योंकि तलवार तो थी ही नहीं चाकू का विश्वास था—सो दोनों में से कोई चीज नहीं मिली । मैं अन्दर जाकर पड़ रहा ।

अगले दिन उसने जैसे ही कुत्ते की पिटाई की, मैंने कुतिया लाकर दो धौल जमाईं । कुतिया पिटने में जरा कच्ची निकली वह मेरे हाथ से छूटकर उधर जा पहुँची ।

कुतिया के पहुँचते ही उसने कहकहा लगाया और मनोहर से कहा—

"देखना कुल-बधू आई हैं जरा करना खातिर मनोहर।"

मैंने कुतिया को बुला लिया और यह कहकर "मुझे यह बहन भांजियों से मिलना-जुलना नहीं भाता" उसकी और पिटाई की।

अगले दिन भी दोनों ओर से नाम ले लेकर पिटाई हुई।

उससे अगले दिन इत्तफाक से कुत्ता फिर भाग आया और मैंने यह सोचकर कि इसका जन्म ही शायद पिटने को हुआ है, उसकी पिटाई शुरू कर दी।

अपना कुत्ता पिटता देख वह भी लाल-पीली होती आई और मैं भी आखिरी फैसले के लिये तैयार हो गया।

"तुम किसके बच्चे थे, मेरे कुत्ते को मारने वाले ?"

"आदमी के।"

"अगर मैं तुम्हारी कुतिया की हड्डी पसली तोड़ दूँ ?"

"तोड़ देना जब वह जाये उधर।"

"आयन्दा हाथ लगाया तो नतीजा बुरा निकलेगा !"

"नतीजा कुछ निकले तो सही, यह तो बिना नतीजे ही रोज पिटते हैं दोनों।"

"तुमने इसका नाम मालती तो मेरे चिढ़ाने को ही रखा है।"

"और तुमने मनोहर।"

"ओह, तो जनाब का नाम मनोहर है और पशु प्रेम का यह हाल है ?"

"जी हाँ, उस परीक्षा में तो केवल तुम्हीं पास हो ?"

"तुम शायद किसी भी परीक्षा में पास नहीं हो सकते।" यह कह-कर वह चली गई।" कल मैं भी बाहर गया था आज आया हूँ।

तब ठीक है। कल से युद्ध बन्द ही हो जायेगा और शायद दूसरा युद्ध चलेगा। अब मैं एक सप्ताह बाद फिर आऊँगा।

एक सप्ताह बाद फिर गया। मनोहर बीमारी से कल ही उठा था।

"क्या हाल है मनोहर ?"

"अब ठीक ही है पहली बीमारी दूर हो चुकी और कुतिया भाग चुकी। मैं बीमार था। उसका रुख अब मुलायम है।"

"वह तो होना ही चाहिये था।"

"कल आई थीं खुद, कुत्ता भी आया था। अब उसका नाम मनोहर से दामोदर रख दिया है। अपने पिता को भी पता नहीं यहाँ कैसे भेजा था वह भी रोज क्षेम-कुशल पूछ जाते हैं। उन्होंने अपने घर मुझे ले जाने का आग्रह किया परन्तु मैं जाता ही क्या अब तो ठीक ही हो चला हूं।

"तब तो बीमार रहना ही अच्छा था।"

"अरे नहीं मनहूस एक जिन्दगी सौ नियामत।"

मैं चला आया लखनऊ से और कुछ दिन दिल्ली की धूल फाँकनी पड़ी। दो माह बाद लौटा। कोठी की फिर याद आई पहुँचा फिर।

"मनोहर का क्या हाल चाल है ?"

"जमींदोज हो गये थे क्या ?" मनोहर ने पूछा।

"हाँ यार कुछ काम ही ऐसा था।"

"तुम्हारी बीमारी दूर हो गई।"

"पूरी तरह !"

अभी पूरी तरह मनोहर कह पाया ही था कि एक चमक-चांदनी सी गजगामिनी आई और आकर बैठ गई।

मेरा परिचय शायद पहिले ही कभी मनोहर दे चुका था क्योंकि उसने आते ही पूछा—

"कहिये सुन्दरजी किसी और कुतिया का पता लाये हो क्या इनके लिये ?"

"लेकिन तुम्हारा 'मनोहर' कहाँ गया ?"

"जाता कहाँ……यह है।"

शरियत का शासन

आज मार्शल-ला का अन्तिम दिन था जो सात बजे समाप्त हो गया था और करफ्यू आर्डर शाम को छ: बजे से आरम्भ होने वाला था। मार्शल-ला के इन दिनों ने देश भर के हाली-मवालियों का बुखार काफी ढीला कर दिया था। सिवाय इसके कि कुछ लुच्चे-लुंगाड़े कहीं अपने आसपास की गलियों के ताले चटखा लें या किसी के बर्तन ले भागें, कोई बड़ा माल किसी के हाथ इसलिए नहीं लगा था कि गोली खाकर माल लेने की जुर्रत कोई नहीं कर पाता था।

इन दिनों मे छज्जन, जुम्मन और बसीरू को न कहीं से शराब मिली न कहीं कबाब दिखाई दिया और न किसी शरीफ खानदान की बहू-बेटी को देखकर गंदी गजलें गाने का ही मौका मिला। कई दिनों के बाद आज तीनों शुक्र, शनीश्चर और राहू एक साथ दिखाई दिये थे।

बाज़ार में आज भी सन्नाटा था, बड़ी-बड़ी दुकानों में ताले लटक रहे थे, कहीं-कही रेस्तराँ, होटल या नानबाइयों की दुकानें जरूर खुली दिखायी दे रही थीं। तीनों की मण्डली बाजार का गश्त लगा रही थी निगाहें कभी सन्तरियों की संगीनों पर कभी लटकते हुए तालों पर और कभी होटलों पर जम कर लौट आती थीं।

इस बार जैसे ही बसीरू की निगाह एक होटल की ओर उठी तो उठी ही रह गयी। मौलाना जलालुद्दीन होटल के दरवाजे को पिटे हुए

सांप की तरह आहिस्ता-आहिस्ता पार कर रहे थे। मौलाना को देख कर बशीरू ने कहा—"खिरामा-खिरामा चले जा रहे है।"

"अबे कौन चले जा रहे हैं ; नकाब में हैं या बे नकाब ?" जुम्मन ने बसीरू के कन्धे को पकड़ते हुए अपनी ओर को घुमाया।

"तुम भी गावदू ही रहे, जुम्मन मियां ! अबे बन्दर की औलाद, मज़हब अब परदे के बाहर हो गया है, वह तो मुंह से हटकर अक्ल पर आ पड़ा है।"

"अच्छा बेटा, जुम्मन ने अपना एक हाथ हटाकर कहा, अब तो तुम पूरे लीडर बन गये। वह दिन भूल गये जब दिल्ली में जामामस्जिद पर सांपों के मजमे लगाया करते थे।"

बशीरू ने अपना कन्धा छुड़ा लिया और कहा, "न वह अपने सांपों के मजमें भूला हूँ और न तुम्हारा चांदनीचौक में 'पैसे के दो-दो हैं जी,' 'यह नागपुर की मिठाइयाँ हैं जी,' की आवाजें लगाकर सन्तरे बेचना, खुदा कसम क्या मीठी आवाज थी, उस वक्त तो तुम ऐसे लगते थे जैसे धोबी का गधा पिटते-पिटते रेंक रहा हो।"

दोनों के आपे से बाहर होने के पहले ही छज्जन ने मामला सम्भाला। "अमां, अभी एक घूंट भी हलक से नीचे नहीं उतरी, पहले ही दोनों को एक दूसरे के खान्दानी-पुस्तैनी पेशों की यादें आने लगीं, यह तो बताओ कि कौन चला जा रहा था, कहां चला जा रहा था ?"

"अमां था कौन, बशीरू ने मुड़ कर कहा, वही थे उस दिन वाले मौलाना जलालुद्दीन, जो एक दिन खुदा और रूह की तश्री कर रहे थे और परसों मुहल्ले की मसजिद में जो यह फरमा रहे थे कि अहमदिये काफिर कैसे बने।"

"कहां गये फिर वह ?"

"सामने वाले शराब के होटल में।"

"तो चलो, हम भी चलें बशीरू, छज्जन ने कहा, रंग आएगा, यह

तो शराब को हराम कहते थे।"

तीनों का गुट होटल में घुस गया और मौलाना की मेज पर ही जा धमका। मौलाना ने अभी बोतल खोली ही थी कि इन्हें देखा। पहले तो कुछ सिटपिटाये, फिर हिम्मत बांधकर, कुछ खांस-खूंस कर, मुंह खोला "अमां आओ यार, जरा सिर में दर्द था, दवा की दुकान कोई खुली नही थी सोचा दो घूंट जरा इसी के गले मे उतार लें, पर यह काम जरा मुश्किल मालूम होता है, कुरान में हराम लिखा है।"

"इसमें कौन बड़ी बात है, हम आपकी इस हराम काम में मदद को तैयार हैं।" जुम्मन ने कहा।

"हाँ-हाँ, कह कर मौलाना ने लाल बोतल जुम्मन की ओर सरकाई और छज्जन ने सोडा मिलाकर गिलास तीनों की ओर बढ़ाये।

पहले दौर के बाद जब दूसरा दौर शुरू हुआ तो मौलाना के मेंढक मार्का चेहरे पर, जरा ताज़गी आई। आंखें बिल्ली की तरह चमकीं, जबान में बोलने की सरसराहट पैदा हुई बोले, "अमाँ, बशीरूद्दीन इस साली हुकूमत से तो अब जान आजिज आ गयी है; लाहौलविला, पूरे एक हफ्ते तक कम्बख्तों ने कब्रस्तिान में रखा।"

"बिल्कुल दुरुस्त, इस मारसल्ला का मामला तो हमारी समझ में भी नहीं आया, खुदा जाने कौनसा मनहूस दिन था जब दिल्ली से इस जन्नत की तरफ कूच किया, बशीरूद्दीन बोले।"

"जुम्मा था बेटा बशीरू, मुझे याद है अभी तक जब हम और तुम पुराने किले के कैम्प से इस तरफ आये थे" छुज्जन ने कहा।

"तमीज से बात कर वे चोट्टी के नाम तो पूरा ले अपने चचा का बशीरू कुढ़कर गरजे।"

अबकी बार जुम्मन ने जरा हौसला दिखाया—"बुरा न मानना मियाँ बशीरू—जिसने अपने बापको बाप नहीं कहा, वह पड़ौसी को चाचा क्या कहेगा।"

छज्जन—"अबे चल धोबी के, बड़ा आया फैसला करने, कमजात कहीं का, जेबें काट-काट कर गुजर की और अब चला है बातें बनाने।"

मौलाना जलालुद्दीन सातवाँ गिलास मुँह से लगा रहे थे। कुछ कतरे सफेद दाढ़ी पर भी गिर पड़े थे, जो बिल्कुल ऐसी लग रही थी मानों श्वेत बुर्श पर लाल बिन्दियां जड़ दी गई हों। लड़खड़ाती ज़ुबान से बोले—"क्या बकते हो कमबख्तो, नाहक क्यों लड़ते हो, जरा मेरी तरफ गौर करो। यहाँ आने से पहले मेरा काम क्या था, जानते हो, फकीरों का मतब चलाना। 'दे जा खुदा की राह पर' और 'हाथ से अपने देता जा तेरा पार करे बेड़ा मौला' और इससे भी अच्छे अच्छे माँगने-खाने के कलाम मैंने ही ईजाद किये थे और भी जितने लोग इस तरह की आवाजें लगाकर मांगा करते हैं, खुदा कसम सब अपने ही शागिर्द समझो।"

छज्जन ने कहा—"अमां यह तो बताओ मौलाना, यह मारसल्ला अब तो फिर नहीं लगने का। खुदा जानता है सात दिनों में पहली बार उतरी है हलक के नीचे।"

"मैं खुद इस बदतमीजी से तंग आ गया हूँ, तुमसे ज्यादा मियाँ मुझे कुछ भी पता नहीं है। कौन जाने ये मरदूद कब अक्ल से काम लेंगे और इन मनहूस फौजियों को यहाँ से हटायेंगे।" मौलाना ने कहा।

बशीरू ने पूछा—"मौलाना आखिर वह शरियत की हकूमत कहाँ भाग गई ?"

"वह फौजियों ने मसजिदों में भरदी है, खालू के बेटे।"

अब की बार छज्जन बोले—"क्या जलवे थे दिल्ली में, क्या मज़े आ रहे थे हिन्दुस्तान में, नेहरू की सरकार और चारों तरफ बहार है। कल ही खत आया है मामूं का, लिख रहे हैं कि यहां गेहूँ नौ रुपये मन बिक रहा है गरमियों में लोग शरबतों की सबीलें लगाते हैं; हाय हिन्दुस्तान ! सरौली आम और चार आने सेर।"

"अबे, अपने लिये अब क्या रखा है वहां, सरहद के पार गये तो

वहाँ भी गोली लगती है।" जुम्मन ने कहा।

पता नहीं कि कब तक यह चिंडाल-चौकड़ी यों ही बैठी रहती अगर फौजी लारियों ने करफ्यू लगने का ऐलान न किया होता। अब तो तीनों घबराये। मौलाना से राय माँगी, मौलाना ने नशे की झोंक में राय दी कि चलकर किसी मसजिद में रात बिताई जाय। राय तीनों को पसन्द आई; लड़खड़ाते कदमों से तीनों पास की एक मसजिद में जा घुसे।

नशा पूरे योवन पर था, जुबानें बे-लगाम हो रही थीं। तहजीब ताक पर थी, इन्हे यह भी पता नहीं था कि खुदा के घर में पड़े हैं या अपने घर में।

बशीरू फिर बहका—"मौलाना!"

"अबे, कह भी क्या कहता है?"

"वही बात!"

"कौन सी?"

"हमें यहाँ आकर क्या मिला?"

"जो हिन्दुस्तान में भी नही मिला था बेटे!"

"मतलब!"

"माले-मुफ्त!"

"अब यह माले मुफ्त कब तक मिलेगा?"

"जब तक होटल में शराब है, औरतों के चेहरे पर शबाब है और बकरों के अन्दर कबाब है।"

"यह कबाव-शबाब का दौर एक दिन तो ख्वाब होगा ही मौलाना!"

"बस, उसी दिन हम भी वही होंगे जहाँ से चले थे, जमीन गोल है बशीरू, दुनियाँ मानती है।"

अब छज्जन बोले—"मियाँ, साफ क्यों नहीं कह देते कि फिर

दिल्ली की जामा-मसजिद होगी और वहाँ पर तुम्हारे साँपों के मजमे लगा करेंगे।"

बशीरू जैसे पुरानी दुश्मनी याद कर रहा था, कहा—"सांपों के मजमे लगाने के दिन गये छज्जन, यार लोगों ने कभी वह मुर्गी हलाल नहीं की कि जिसके शोरवे से एक ही वक्त का काम चले।"

"तो क्या भैंसें मारी थीं ?"

"अबे, तो और क्या बटेर मारी हैं, पड़ौस के खुरमी का माल अब भी बसीरूद्दीन के पास इतना है कि तुम जैसे चार गुलाम रख सकता हूँ।"

"इतना तो बेटा, मैंने नये सीजन में ही कमा लिया है, चार तांगे हैं तेरे यार के पास। छज्जन खाँ किसी से कम नहीं है न किसी से पीछे रहा और न रहेगा। यह एक फीरोजाबादी औजार है, पता नहीं कितने काफिर हलाल करके इससे अल्लाताला की खिदमत में भेजे हैं। तेरा जितना खर्च है उतना तो अलग अलग मेरी पाँच बीबियों का है।" छज्जन ने मूँछों पर ताव देकर कहा।

पांच बीबियों के नाम से मौलाना चौंके—"खुदा ! खुदा !! शरियत की हुकूमत में चार बीबियों से ज़्यादा रखना नाज़ायज़ है। इसलिये अच्छा है इस नाजायज काम से तोबा कर लो और पांचवीं बीबी को क़िसी मौलाना की नज़र कर दो।"

छज्जन ने कहा—"मियां, जायज़ काम आजकल होता कौन-सा है ?"

"तोबा ! तोबा ! यह मुल्क की तौहीन है, कौम की अस्मत पर हमला है, इस्लाम पर दाग़ है।" मौलाना ने चिल्ला कर कहा।

इस पर छज्जन ने ऊँची आवाज़ पर मौलाना को गालियां सुनानी शुरू कर दीं। मौलाना ने कहा—"मेरा मतलब तुम्हारी बीबियों से था और किसी बात से नहीं।"

छज्जन ने उसी आवाज़ में जवाब दिया—"वह तुम्हें नहीं बख्शी जा सकतीं।"

"मौलाना का मतलब अपने लिये थोड़े ही था।" जुम्मन ने वकालत की।

"तो क्या तेरे लिए सिफारिश कर रहे थे।"

जुम्मन ने मुँह पिचका कर कहा, "मेरा निकाह तो अभी परसों ही उन्होंने एक ईसाई खातून से कराया है।"

"तो क्या मौलाना ने शादियों की दुकान खोल रखी है ?"

अबकी बार मौलाना भी बिगड़े, बोले—'हद से बाहर मत जा मरदूद जानता नहीं मेरा नाम जलालुद्दीन है, तुझ जैसे कितनों को जहन्नुम भेज चुका हूँ।"

"अबे, चल गीदड़ के फरजन्द, आया है साला बड़ा तीसमारखाँ बनने।'

"आऊँ, खीच लूँ जबान तेरी।" मौलाना बोले।

"मियाँ, स्यार की मौत मरोगे।"

"अच्छा बकरी के, तू चबर-चबर बन्द नहीं करेगा।"

बात बढ़ गई, मौलाना ने चाकू निकाल लिया, आँख मींचकर 'या अली' का नारा लगाकर जो हाथ मारा तो चाकू से पास सोये हुए इमाम का कान कट गया। इमाम ने चीखकर अल्ला की याद की जिसे सुनकर कुछ फौजी अन्दर घुस आये।

सुबह जब मौलाना को होश आया तो पास खड़े सन्तरी से मौलाना ने पूछा, "हम कहाँ हैं भाई ?"

"सरकारी यतीमखाने में।"

"अमाँ, जरा साफ-साफ कहो, भाई! तुम एक पढ़े-लिखे समझदार आदमी से बात कर रहे हो।"

बशीरू ने आवाज लगायी, "अमां मौलाना, किसके मुंह लग रहे हो तुम भी, ये लोग ज्यादा पढ़े लिखे तो होते नहीं जो तुम्हारी कद्र करें।"

फौजी सन्तरी ने जब कहा कि इनकी कद्र तो मसजिदों और मयखानों में होती है तो मौलाना ने डपट कर कहा, "हराम समझता हूँ मैं शराब को, क्या समझते हो ?"

अपने तीनों साथियों के साथ मौलाना सदर थाने के अधिकारियों के सुपुर्द किये गये, उन्होंने जब यह माँग की कि उनका न्याय शरियत के कानून के मुताबिक हो तो उन्हें यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि देश में इतने दिनों तक गड़बड़ होने के बाद भी शरीयत की हुकूमत नहीं शुरू हुई और वह भी उसी कानून की लिस्ट में हैं जिनमें बशीरू, छज्जन और जुम्मन जैसे मामूली लोग हैं।

वाक्-युद्ध

"आवछी" जहां मनहूसियत का प्रतीक माना जाता है, वहां "वाक्-युद्ध" वीरता का प्रतीक है। इस बात को हो सकता है कुछ बुद्धिमान, बुद्धि के विशारद या समझ के शत्रु मानने से इन्कार करदें; किन्तु सांसारिक प्रचलन में यह दोनों बातें इतनी ही सचाई से मानी जाती हैं, जैसे ईमानदारी के मामले में गोदरेज कम्पनी।

हां, तो आवछी वाले मनहूसों को और वाक्-युद्ध वाले वीरों को दो ही जगह देखा जा सकता है—मानव को दानव बनाने वाले कालिजों के बोर्डिङ्ग हाउसों में या पद—वितरण की वेला में राजनैतिक दलों के दफतरों में। परन्तु यदि किसी इच्छित पुरुष के भाग्य में उन स्थानों पर पहुंचना दुर्लभ हो, तो अपने राम उसे धड़ाधड़ 'रेल-यात्रा' की सलाह देंगे, वहां निश्चय ही दोनों 'मनुष्य-माडल'-मिल जाएंगे।

अपने मित्र श्याम के साथ जब हम मुस्लिमलीग के पितृ-स्थान अलीगढ़ से लखनऊ के लिये गाड़ी में चढ़े तो पहले दरवाजे पर ही मनहूस नंबर १ का दर्शन हुआ, उसने आवछीं की तो अपने राम का माथा क्या पैर तक भी ठनक गये; मैंने श्याम से कहा कि अच्छा तो तुम भी इस गाड़ी को आचार्य कृपलानी की तरह, जैसे उन्होंने कांग्रेस छोड़ी थी, छोड़ दो। श्याम बोला—"अरे नहीं यार, मैं तो रफी अहमद किदवई

के सिद्धान्तों को ऐसे मामलों में मानने वाला हूं।" अब उसकी जिद देखी तो मैं चुप रह गया।

गाड़ी में राम का नाम लेकर चढ़ा, लेकिन मन में यह भय बराबर बना रहा कि इस गाड़ी से हम दोनों सही सलामत लखनऊ पहुँचने वाले नहीं। कौन जाने आज ही यह कनाडियन एंजिन गाड़ी को किसी पुल के नीचे डाल दे या अनाड़ी घोड़े की तरह लाइन छोड़कर खेतों में ही चल दे या इसी बात का ही किसे पता है कि स्टेशन मास्टर ही ताश खेलते-खेलते टेलीफोन पर यों ही-हलो, हलो कह दे और पीछे या आगे से कोई और गाड़ी आकर इस गाड़ी पर चढ़ जाए। इसीलिए मैं खिड़की के पास उस मनहूस से लग कर खड़ा हो गया कि ले बच्चू हम तो दुनियां से ही चल दिये परन्तु राशन तू भी अपना समाप्त समझ ले।

गाड़ी में भीड़ कितनी थी इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि 'लघुशंका—समाधान' के स्थान पर भी यात्रियों का अधिकार था और उस पर दो-तीन आदमी इस तरह डटे बैठे थे कि मानों किसी यज्ञ की रचना कर रहे हों।

अब सुनिए श्याम का हाल। श्याम 'वाक—युद्ध' और 'हाथ-युद्ध' दोनों का अच्छा अभ्यासी था और जितनी देर तक मैंने मृत्यु का आव्हान किया उसने अपने युद्ध के लिए मोर्चा तैयार कर लिया। अब वह एक खद्दरधारी सज्जन से बोला—

"कहां जायेंगे महाशय ?"

"जहन्नुम में !"

"तब तो आपको पहले दर्जे में बैठना चाहिए था, क्योंकि रेल द्वारा जो जहन्नुम भेजे जाते हैं वे अधिकतर प्रबन्ध विभाग की कृपा से उसी दर्जे से भेजे जा रहे हैं। दूसरा रास्ता डब्बे के अन्दर न बैठ कर पटरी पर लेटने का भी सुगम है।"

"मैं आप से सलाह नहीं माँग रहा हूं।"

"वैसे तो मैं वकील हूँ और सलाह के पैसे भी अच्छे लेता हूं, परन्तु गाड़ी में अपने पेशे के प्रचार के लिए यह मशविरा निःशुल्क ही दिया करता हूँ।"

"आप बस खामोश खड़े रहिए, वरना और कुछ भी हो सकता है, मुझे सलाह नहीं चाहिये।"

"जी, अहिंसा में मेरी आस्था भी कुछ कम ही समझिए।"

छींक अपना असर करती जा रही थी, श्याम अब हिंसा का प्रदर्शन करने के लिए तत्पर था, उसकी दोनों आंखों में मोमबत्तियाँ जलने लगी थीं कि अचानक ही बिल्ली के भाग्य से छींका टूट गया और ऐसा टूटा कि उसके साथ ही मुझे भी बैठने को जगह मिल गयी। एक लड़ाई को बुरा समझने वाले सज्जन ने उसे बुलाया और दूसरे ने अपनी नींद को छुट्टी देकर आधे बिस्तर पर मेरा अधिकार स्वीकार कर लिया।

अब हम दोनों आराम से बैठ गये, लेकिन फिर भी खद्दरधारी की आँखें हिंसा, घृणा, भय, लज्जा आदि अनेक वस्तुओं का भार संभाले हमें घूरती ही रहीं।

हमारे बैठते ही अगला कोई स्टेशन आया, गाड़ी रुकी। छींक वाले ने फिर छींका और दरवाजा खोलकर एक लड़की उस में घुसी।

"मैंने कहा—लो एक आफत और आ गयी।"

"श्याम बोला, एक नहीं दो।"

कहना उसका भी ठीक था क्योंकि लड़की के घुसते ही टी० टी० भी पीछे आ धमका और उसने पहले खद्दरधारी से ही टिकिट माँगा।

"कहां जाइएगा श्रीमान् जी, टिकिट लाइए।"

उससे पहले ही श्याम बोल उठा कि मैं तो लखनऊ जाऊंगा यह लीजिए मेरा टिकिट और आप (खद्दरधारी) जहन्नुम जा रहे हैं। वहां का टिकिट शायद इनको सीधा न मिला हो और बनवाना पड़े। पूछ लीजिए जरा।"

डब्बे में कहकहा लगा। खद्दरधारी जरा झेंप गये लेकिन फिर संभल कर बोले, "टिकिट तो मेरा अलीगढ़ में समाप्त हो गया था अब लखनऊ तक का और बना दीजिए। यह १०) की रेजगारी है।"

श्याम ने फिर आवाज कसी "चन्दे में भी चवन्नी से ज्यादा आजकल कोई नहीं देता।"

अब फिर खद्दरधारी की जबान खुली आप बोले—"मैंने शायद आप लोगों को बाईस या सत्ताईस नम्बर की बीड़ी का गाना गा–गाकर विज्ञापन करते देखा है कहीं।"

श्याम—"आप भूल रहे हैं। आपने हमें किसी राजनीतिक दल के लिए भाषण दे-देकर वोटों की भीख मांगते देखा होगा।"

"कौनसा वह राजनीतिक दल है जिसे आपके अलावा वक्ता ही कोई और नहीं मिला ?"

"जी, फिलहाल तो हमारा कन्ट्रैक्ट कई राजनीतिक दलों से है।"

"आपको किसी और डिब्बे में जगह दिखाई नहीं दी ?"

"दिखाई दी थी, जनाने डिब्बे में।"

डिब्बे वाले आनन्द में आ रहे थे। "वाक्-युद्ध" को शाँति में बदलने के लिए वे तैयार नहीं थे। इसलिये एकाध चिनगारी बीच-बीच मे छोड़ देते थे।

अबकी चिनगारी का नम्बर छींक वाले ने अपनाया।

वह बोले, "आप तो एक भले आदमी का रास्ता ही खराब किये जा रहे हैं।"

इस इनाम के असली हकदार तो आप ही हैं, दरवाजे पर बैठकर आपने सारे यात्रियों के शकुन बिगाड़ने शुरू कर दिये।

"जनाब मुझे यह रोग नमक कानून तोड़ने में लगा था।

"मेरा मतलब आपकी आलोचना नहीं, अपितु आपकी छींक की सराहना से था।"

"तब नाक कटाई तो जा नहीं सकती !"

"दरवाजा तो छोड़ा जा सकता है ?"

"पता नहीं आप लोगों की कैसी बुद्धि है ?"

"बिल्कुल भैंस जैसी !"

"तब तो बीन बजाना बेकार है ?"

"आप तो बस छींकते ही रहिये।"

"पता नहीं क्यों खद्दरधारी सज्जन और छींक वाले दूसरे ही स्टेशन पर मैदान छोड़ भागे। अगले स्टेशन पर डिब्बा और खाली हो गया।

मेरी वाली सीट पर वह टी० टी० के आगे-आगे आने वाली लड़की आकर डट गयी। श्याम भी शायद वाक्-युद्ध से थक चुका था। उसने भी ऊपर की सीट संभाली। मैंने एक मासिक पत्रिका के पन्ने उलटने शुरू कर दिए।

"आप कहाँ जायेंगे, लड़की ने कुछ देर बाद पूछा।"

"क्यों ?"

"यदि ऐतराज न हो तो दूसरा पत्र मुझे दे दीजिए।"

"ले लीजिए, लेकिन पढ़ाई के आधे पैसे होंगे।"

"यह आपका मेरे साथ ही सहृदय व्यवहार है या अखबार पढ़वाने का ही कारोबार करते हैं ?"

"वैसे तो मैं व्यापार के मामले में अपनी पत्नी तक से भी चार पैसे कमा ही लेता हूँ, परन्तु महिलाओं के साथ जरा और कठोरता बरतने की मेरी आदत ही है।"

"किसलिए ?"

"इसलिए कि लिपिस्टिक और पौडर वालों के यहाँ पैसे जाने की अपेक्षा मेरी जेब में आना उनसे ज्यादा अच्छा है। और देखिये विद्यादान से भी बड़ा कन्यादान है, परन्तु उसके दाता से मांगने का इनाम चांटा, चप्पल, जूता, डन्डा जो भी दाता के हाथ में उस समय आ जाए, वही दान देता है।

"इसीलिए तो यह देश अशिक्षित रहा।"

"और इसीलिए अखबारों में धड़ाधड़ ताले पड़ रहे हैं, क्योंकि यहां पढ़ने वालों की संख्या में खरीददारों से अधिक मंगते हैं, जिनका काम ही माँग-माँग कर पढ़ना है।"

"आप वैसे करते क्या कार्य हैं?"

"नारी-सुधार का कार्य।"

"क्या मतलब?"

"हिन्दू कोड के विरुद्ध प्रचार।"

"आपको हिन्दू-कोड से विरोध ही क्यों है?"

"इसलिए कि मैं नारी को नारी के रूप में देखना चाहता हूँ न कि वेश्या के।"

"क्या नारी जागरण का नाम ही वेश्या-वृति है?"

"जी वेश्या-वृति का नाम ही नारी-जागरण है?"

"इस बिल से महिलाओं को मिला ही क्या है?"

"मैं कब यह कह रहा हूँ कि कुछ मिला है, बल्कि मैं तो यह बता रहा हूँ कि उनके पास का भी छिन गया।"

"छिना क्या?"

"भाई और पति दोनों ही।"

"क्या आप भी अपनी बीवी की तलाक से डरते हैं?"

"क्या आप भी तलाक की समर्थक हैं?"

"सोलह आने। आप जैसे वाचाल आदमी की सूरत से ही मेरे होश हिरन हो जाते हैं।"

"और फिर भी मांग रही हैं मुझ ही से अखबार और वह भी मुफ्त में।"

"पर दिया कहां आपने।"

"इन्कार भी नहीं किया।"

"मैं आपके साथी की शठता भी बहुत देर से देखता आ रहा था, यह भले आदमियों को शोभा नहीं देता।

आप यह मानती ही क्यों हैं कि वह समझदार है ?"

"इसलिये कि वह आपका साथी है।"

"मुझे यह देखकर दुःख हुआ कि आपके विचार संकुचित हैं, मुझे भी समझदार समझ रही है।"

"हाँ, अभी विचार पूर्ण विकसित नहीं हुए हैं और कुछ का कुछ समझने की आदत भी है।"

"तब कोडबिल का लाभ आप क्या उठा सकेंगी ?"

"निश्चय से ही जानिये मैं पहली लड़की हूँ जो इसका लाभ उठाऊँगी।"

बातों ही बातों में ऐसा कुछ तार बंधा कि यह पता भी न चला कि गाड़ी कब इलाहाबाद पहुँच गई।

मैंने अपने साथी को जगाया, उसने थकान उतारी—मुँह धोया और बिस्तर बाँधा, लड़की इतनी देर में कभी की बिस्तर गोल कर चुकी थी।

मैंने जरा बाल-वाल ठीक किये, क्योंकि सुसराल का मामला था। एक ताँगा किया और जा पहुँचे ठिकाने पर। सुसराल पहुंचने पर चला कि बिटिया भी अभी आई है।

पहले भेंट हुई श्वसुर साहब से, वह कबूतरों को सवेरे का नाश्ता करा रहे थे। क्षेम-कुशल पूछी। घर की, बाहर की, अपनों की, परायों की, यानी हमारी ओर का वह आदमी जिसका वह नाम जानते थे, क्षेम-कुशल से वंचित उन्होंने नहीं रक्खा।

उसके बाद उन्होंने नौकर को आवाज दी, नौकर के न बोलने पर उसके पूर्वजों को श्रद्धाञ्जलियाँ देनी शुरू करदीं। कुछ देर बाद नौकर आया तो एक सुन्दर सी गाली उन्होंने उसे दी।

एक दिन बीता, दो दिन बीते, तीसरे दिन हमने अपने घर जाने की घोषणा कर दी।

उस घोषणा के अल्टीमेटम को उन्होंने मान लिया और बिटिया को समझा बुझा कर ताँगे पर लाद कर स्टेशन छोड़ गये। उनकी बिटिया को हमने शिष्टाचार के अनुसार उतारा और गाड़ी में बिठा दिया।

जब गाड़ी चली तो बिटिया की शर्म जरा हल्की पड़ी। पहले स्टेशन के पार होने से पहले ही उसने अपना आधा और दूसरे पर जो सारा घूंघट हटाया तो हम दोनों ही एक दूसरे को देखकर हैरत के खड्ढे में गिर पड़े।

"अखबार पढ़ियेगा क्या ?" मैंने कहा।

"जी मेरे पास कीमत के आधे पैसे देने को नहीं हैं और उधार पढ़ना छोड़ दिया है।"

"यूँ ही दान समझ लीजिये।"

"विद्या दान करना आपने कब से आरम्भ कर दिया ?"

"जब से कन्या दान मिला।"

दूसरा स्टेशन आया तो मैं चाय वाले की तलाश में निकला, निकलते ही पूछा—"कहाँ जा रहे हो ?"

"नारी सुधार के कार्य के लिये।"

"अब भी बाहर जाकर सुधार की आवश्यकता है क्या ?"

"तुम तो कोडबिल के लाभ का फैसला कर चुकी हो।"

"बस, अब यह 'वाक्-युद्ध' बन्द करो।"

चेहरे की चूनाकारी

चेहरे की चूनाकारी का किस्सा अपने एक मित्र सतीश ने सुनाया था, जरा आप भी सुनिये—हरीश कह रहा था।

"गये थे हरि भजन को, ओटन लगे कपास।" यही हाल आज अपना रहा। नई दिल्ली के कनाट प्लेस और बारह खम्बा का १०–१२ बार चक्कर लगा कर, पुरानी दिल्ली के चांदनीचौक में, उचक्कों की तरह राहगीरों और राहगीरिनियों को घूरता हुआ मैं आगे बढ़ रहा था। बाजारों में घूर–घूर कर उठाईगीरों की तरह मेरे भटकने का कारण यह था कि मैं यह जानना चाहता था कि नगर की कितनी प्रतिशत नव-यौवना या प्रवल यौवना चेहरों पर पालिश करके बाहर निकलती हैं।

कई दिन से डा० ग्राहम की तरह यह विचार दिमाग में इधर-उधर दौड़ रहा था कि तेल और सुर्मे की तरह यह पौडर और लिपिस्टिक की लीपा-पोती भी यूँहीं कपडों से छुट छुटाकर बेकार जाती है अथवा पतियों या प्रेमियों के प्रेमाभिनय के समय यह लाली और सफेदी सीधी आदमियों के उदरों में पहुंचती है।

यदि यह दूसरी बात अर्थात् नारियों की यह चूनाकारी चूहों की तरह मर्दों के पेट रूपी बिलों में पहुंचती है तो यह स्वास्थ्य पर अत्यन्त बे हिसाब मार है क्योंकि वनास्पति घी के लिये तो वैज्ञानिकों ने घोषणा करदी कि यह स्वास्थ्य के लिये हानिकारक नहीं किन्तु इस चूनाकारी या

पालिश, जो भी कुछ कहो, किसी ने इसके बारे में आज तक यह नहीं बताया कि इसमें कौन से विटामिन के तत्व हैं।

इसी उधेड़–बुन में उलझा हुआ सरकता–सरकता दिल्ली के भूतपूर्व घंटाघर पर आ पहुंचा। सामने एक महिला-स्वास्थ्य प्रदर्शनी की उम्मीदवार–एक चांटवाले के दही बड़ों से भिड रही थीं। लगता ऐसा था कि मानों सवेरे से ही इन्हें भोजन से साक्षात्कार का अवसर प्राप्त नहीं हुआ और शायद शाम को भी खाने से दुआ सलाम न हो इसलिये इस नादिर मौके को क्यों छोड़ा जाय।

दुकानदार भी शायद आज और ही किसी का मुंह देखकर चला था जिसे आते ही १०० सुनार की एक लुहार की तरह १०–२० छोटी-मोटी चिड़ियों की बजाय एक ही मोटी ताजी बत्तख मिल गयी थी। गांठ की पूरी और चराई में भैंस की भाभी।

बड़ों से निबटने के बाद जब उन्होंने मुंह पर हाथ फेरा तो ऐसा मालूम होता था कि किसी सारे मकान पर सफेदी कर दी गई हो और दर्वाजे को यूं ही छोड़ दिया गया हो। उसने भी शायद मकान की इस बेरौनकी को समझ लिया और तत्काल अपने ट्राम कंडक्टर की तरह गले में लटके बटुए को खोल कर चेहरे की दुबारा मरम्मत करली। पहली सफेदी और लाली चाँट के साथ पेट में गयी।

चेहरे की मरम्मत करके यह नई सड़क को मुड़ीं और मैं एक प्याऊ की ओर बढ़ा जहाँ मुझसे पहले ही एक पालिशदार चेहरा पानी से अपने को टकरा रहा था। टकराना इसलिये कहा गया कि प्यासों को एक आंख से देखने वाला पानी पिलाने वाला कुछ पानी चुल्लू में डालता और कुछ आंखों पर डालता। यहाँ भी उसने इनके सारे शृंगार पर पानी छिड़क दिया। उनके चेचक के आक्रमण से त्रस्त गड्ढे वाले गालों की दशा उस समय ऐसी थी कि जैसे किसी गरीब म्युनिसिपैल्टी ने अपनी निर्धनतावश शहर की डामर की सड़क पर गड्ढों में खरिया मिट्टी

भरवा दी हो। इनके साथ मरम्मत का सामान नहीं था; इसलिए इन्हें अपना वैसे का वैसा ही पानी छिड़का चेहरा ले जाना पड़ा।

बम्बई रेस्टोरैन्ट मे चाय पीते समय एक महिला का मुँह और दिखाई दिया, यह किसी अस्पताल मे तन-मन से मरीजों की सेवा करने वाली कोई नर्स थी। चूनाकारी इनकी भी बिगड़ चुकी थी। शायद दूर से साइकिल पर आने के कारण इनाम में मिले पसीने को अस्वीकार करते समय हाथ बहक गया था और रुमाल को मुँह से रगड़ता हुआ सफेदी को मिटा गया था। कहीं-कही कोई सफेद धारी रह गयी थी। उसी के अनुसार हमने इनकी चूनाकारी का अन्दाज लगाया था जैसे पुरा-तत्ववेत्ता किसी शहर को खोदकर एकाध टूटी-फूटी दीवार से ही वहाँ की प्राचीनता का अनुमान लगा लेते है। एक बात अच्छी थी कि सुर्खी कुछ मजबूत होने के कारण नहीं बिगड़ पाई और थोड़ी सी ऊपर की ओर और बढ़ गई थी। सुर्खी बढ़ी भी इस ढंग से थी कि इनके मुख पर उससे रेडक्रास का सा निशान बन गया था।

कुछ देर बाद इन्होंने रही-सही चित्रकारी पर भी नल पर जाकर पानी फेर दिया और असली श्याम चिड़िया बनकर चल दीं।

मे सड़क से, बीच सड़क पर आया सोचा दूसरी पटरी पर चलूँगा। एक मोटर को भगाये एक लड़की ला रही थी। वह पता नहीं कहाँ उड़ी जा रही थी। मेरे पास आकर उसने जैसे ही ब्रेक लगाया तो मैंने समझा कि शायद मेरे विचारों का इसे पता चल गया है और यह भी चूनाकारी की गणना से बचना नहीं चाहती, मैंने भी मुँह मोटरकी ओर कर दिया।

"आदमी तो पागल नही जान पड़ते!" उसने अपनी अक्ल का परिचय दिया।

"जी, मैं किसी पागल ही की तलाश में हूँ।"

"सड़क से अपनी गाड़ी आगे बढ़ाइये, यदि टक्कर हो जाती तो?"

"डाक्टरों को काम और अखबारों को समाचार मिल जाता।"

"मेरे पास फालतू बकवाद का समय नहीं है।"

अब इस चिड़िया को पटकने के लिये दूसरी तदवीर का सहारा लेना पड़ा, मुँह लगने में खतरा था।

"आप गाड़ी किस रफ्तार मे ला रही थीं ?" मैंने कहा।

"आप से मतलब ?"

"यह शहर की सड़क है न कि रोडवेज की; लाइसेन्स निकालो, लिखाओ गाड़ी का नम्बर चालान करूंगा।"

बस चालान के नाम से होश हिरन हो गये, लगीं गिड़गिड़ाने तो हमने भी माफ कर दिया।

इनको बिदा कर बढ़े ही थे कि एक टाँगे वाला आ अटका।

"दीखता है नहीं क्या ?"

"तुझ से ज्यादा दीखता है।"

"बचता क्यों नहीं ?"

"नीचे उतर, बिना रवन्ना कराये भगा जा रहा है बन्द करूंगा साले तुझे।" इस धमकी से यह भी चित आये।

"सरकार अकेली जनानी सवारी थी, मैंने समझा इस ट्रंक में क्या होगा, चला आया; माफ करदो हजूर, बड़ा गरीब आदमी हूँ।" तांगेवाला गिड़गिड़ाया।

उसे भी माफ कर दिया। ५) का एक नोट पता नहीं कब और कैसे उसने जेब में डाल दिया था।

वहाँ से अपने दिल और दिमाग को आधा घण्टे की छुट्टी देने के अभिप्राय से कम्पनी बाग में आया।

घास गीली थी। गीली ही घास पर एक नव-दम्पति में किसी कटु प्रश्न को लेकर 'काएसौंग युद्ध-विराम वार्ता' चल रही थी। पता नहीं घास की रगड़ से या समझौता भंग की गर्मी से एक पक्ष दूसरे पर आक्रमण कर बैठा। स्त्री के चेहरे के एक ओर की दीवार की सफेदी एक चांटे में साफ थी।

आध घन्टे तक उनकी 'युद्ध–विराम वार्ता' फिर चली और उसके बाद वह स्थान इस गम्भीर प्रश्न के लिये उपयुक्त न समझ कर मैजेस्टिक सिनेमा में समझौता करने के लिये उठ गये।

अपना इंटरवल भी समाप्त हो गया था। ५) का नोट जेब में था। जैसे मिला था, वैसे ही फेंकना था। घुस गये एक सोनियों की दुकान में।

"आंवले का तेल चाहिए।"

"और पौडर कौनसा दूं।"

"पौडर से तो स्नो अच्छा रहता है?" यह एक और आवाज़ थी। शायद मेरे पीछे–पीछे ही यह आई थी, मेरी सलाहकार बनकर।

मैंने भी 'हां' कह दिया।

स्नो और तेल के बाद सुर्खी भी आ गयी वह भी उसी ने पसन्द की। ५ रु० ४ आने का बिल मिल गया।

दुकानदार ने वह पुलन्दा उसकी ओर बढ़ाया उसने मेरी ओर और बाहर निकलकर तेल को छोड़कर उसकी चुनी हुई चीजें मैंने उसके ही हवाले करदी। नोट जैसे आया था वैसे ही गया।

अब दिन छिप चुका था, भूख लग रही थी, पैर आप ही आप घर का रास्ता नाप रहे थे।

नारी-सुधार-योजना

हरीश की एक अजीब चिट्ठी मिली थी गत वर्ष। जन-कल्याण के लिए वह कहानी की तरह लिखी जाती है। चिट्ठी यों थी—

"किसी सार्वजनिक स्थान पर लघुशंका-समाधान करने के अपराध में बिना सफाई की गवाही सुने ही जैसे म्यूनिसिपैलिटी का कोई मजिस्ट्रेट अपना दो चार रुपये के जुर्माने वाला फैसला सुना देता है अथवा अपनी सरकार की गाड़ी को शतप्रतिशत अपना मानकर सदुपयोग करने वाले महानुभावों को बिना टिकट चलने का अपराधी मान कर रेलवे का कोई मजिस्ट्रेट किराये के अतिरिक्त ५०)–६०) का जुर्माना ठोक देता है। कल कुछ वैसा ही निर्णय अपने यहाँ 'गृह-काण्ड' का हो गया और सवेरे जब कौवों के कीर्तन के समय जगा तो हमारे मजिस्ट्रेट अपनी मद्रासी हिन्दी में एक कागज के टुकड़े पर अपना फैसला लिखकर 'अखिल भारतीय नारी-जागरण' के दफ्तर में अपने कपड़े-लत्ते उठाकर एक-दो-तीन हो चुके थे।

पहले तो मेरे उपजाऊ मस्तिष्क में यह आया कि मैं भी किसी नये खुलने वाले राजनीतिक दल में भर्ती होकर देशोद्धार का कार्य आरम्भ कर दूँ और वहीं किसी कार्यालय के कमरे पर कब्जा कर लूँ क्योंकि इस तरह मकान के किराये में जाने वाली हर मास की किश्त और महीने से दो दिन पहले आने वाला महतरानी का बिल कम से कम तो

बच ही जायगा; लेकिन समस्या यह थी कि अब तक बर्थ-कन्ट्रोल का हामी न होने के कारण देश की शिशु-संख्या बढ़ाने में जो मैंने जी भर कर सहयोग दिया था और उसके फलस्वरूप जो घर में बच्चों की बिग्रेड बन गई थी, अपने बिग्रेडियर के न रहने के कारण उसके बन्दर सम बन जाने का भय था और ऐसा होने पर घर भर में तोड़-फोड़ आरम्भ हो जाना अनिवार्य था।

दूसरी योजना यह भी बना रहा था कि घर पर अनाथालय का एक साइनबोर्ड लगा दिया जाय और नौकरी छोड़कर स्वयं उसकी मैनेजरी की जाय और दो-चार बच्चे और अपने जैसे भले आदमियों के मिला कर सरकार को लिख दिया जाय कि वह हमारे इस 'अनाथालय' की सहायता करे तथा अब जो घर में घरवाली रखी जाय उसकी सनद में संशोधन कर दिया जाय। उसे आगे से घर वाली का नाम न देकर "शिशु गाइड" कहा जाय और कोठी कुठले को छोड़कर सारा घर बार अर्थात् अनाथालय उसका होगा। संविधान की तरह मुझे भी पत्नि-विधान में संशोधन इसलिए करना पड़ा कि आजकल की लड़कियाँ शादी से पहिले ही प्रतिक्रियावादी बन जाती हैं और पत्नी-पथप्रदर्शक जैसी ईमानदार किताबों की सलाह न मानकर पतिव्रत-धर्म पर कुठाराघात करने पर तुल जाती हैं और पति के मूल अधिकारों में अपने अधिकार घुसाकर शेष अधिकारों को भी पुरुष के गले में उतारने के लिए उसे न्यायालय तक में नित ही चुनौती देते देखी जाती हैं; इसलिए यदि भूल से फिर कोई ऐसी मरखनी भैंस मिल गई और वह भी इस घर से किसी अर्द्धरात्रि में पलायन कर गई तो अपने राम का कुछ आता जाता नहीं ७०-८० रुपये और रहने को मकान तथा भोजन पर फिर १०-२० तैयार हो जायेंगी शादी की इच्छुक !

अभी अपनी योजनाएँ बन और बिगड़ ही रही थीं कि एक रिक्शे में से बिस्तर उतर कर मेरे घर आया। बिस्तरबन्द की एक मोरी से

नीली साड़ी का एक भाग सलामी करता आया। पहले तो मैंने समझा कि कोई कुल-बधू घर भूल गई है या उनकी कोई सहेली कोडबिल का लाभ उठाकर उन्हें भी सलाह देने आई हैं, लेकिन यह मेरा मतिभ्रम दूर हुआ तब जब मैंने फिर देखा कि अपने घर को ही एक दूसरा सन्दूक भी आ रहा है।

रिक्शे वाला फिर नीचे चला गया और उसके बाद वह स्वयं ही दिखाई पड़ीं। दिन के १० बजे गृह-युद्ध में फिर कुछ गर्मी आई और उन्होंने यह घोषणा कर दी "कि चूंकि 'नारी-जागरण' का कार्यालय संस्था को कल मालिक मकान के पाकिस्तान से सही सलामत लौटने के कारण खाली कर देना पड़ेगा, इसलिये ऊपर वाली बैठक में कार्यालय को दे आई हूँ।"

मैं—"तो शायद इसीलिये आप भी अलवरी मेवों की तरह बेधड़क लौट आयीं?"

श्रीमती—"हाँ और मकान देने की हां करके। कल साप्ताहिक अधिवेशन भी यहीं होगा।"

मैं—"किराया ५०) मासिक लूंगा और उसे पगड़ी समझूंगा। इसके बाद हर महीने की दूसरी तारीख को एक सैंकड़े के आधे यानी वही ५०) रुपये लिया करूंगा, न देने की दशा में किताबें और कार्यालय के फर्नीचर तथा रजिस्टरों को अपने घर की सम्पत्ति में गिनना शुरू कर दूंगा।"

श्रीमती—"अधिवेशन के बाद मैं आपकी बातों पर ध्यान दूंगी।"

मैं—"तब तक यहाँ न कोई अधिवेशन हो सकता है न सत्संग और न कीर्तन। मेरा मकान न तो किसी थैलीशाह की बनवाई कोई ऐसी धर्मशाला है जो बारातों के ठहरने और कीर्तनों के करने के लिये फ्री हो और न घर को मैंने अभी तक गार्डन या टाउनहाल का रूप दिया है जो भाषणों और अधिवेशनों के लिए खुला हो।"

श्रीमती—"लेकिन आप यह न भूल जाइये कि इस सम्पत्ति पर और घर-बार पर आधा अधिकार मेरा है।"

मैं—"और हिन्दू शास्त्र से तुम्हारे पर अधिकार मेरा है।"

श्रीमती—"पुरुषों का यह मतिभ्रम दूर करने के लिए ही इस संस्था को जन्म दिया गया है और मैं इसकी सदस्या भी बनी हूँ।"

मैं—"पहले तुम्हारी संस्था कहीं भले आदमियों के घर के आस-पास या और कहा मकान हा किराय पर लकर दिखा द. आग तार ता

श्रीमती—"खैर मैं बेकार बहस नहीं करना चाहती।"

मैं—"तो सभालो न चूल्हा।"

श्रीमती—"मुझे पुरुषों की गुलामी स्वीकार नहीं आप किसी भी होटल में अपनी भूख शान्त कर सकते हैं।"

मैं—'हमारे पुरुषों के समाज ने मुझ जसों पर दया करके ही होटल और ढाबो की कतार बाजार में खोल रखी है लेकिन औरतो से यह भी न हुआ कि एकाध रोटियों की दुकाने अपनी जाति–विरादरी के लिए ही कम-से-कम खोल दें; वहाँ भी तुम लोगो को आदमियो की कृपा से ही दो रोटियां मिलेंगी।"

श्रीमती जी—"केवल नाक पर पैसा मारने की देर है।'

मैं—'और वह पैसा फिर मुझ जैसों की कृपा से मिलेगा।'

श्रीमती जी—"संस्था मेरी सहायता करेगी।"

मैं—'कब तक ?!'

श्रीमती जी—"जब तक मैं मास्टरनी न बन जाऊं।"

म— ४१,९५५ आठ आन मिलत ह मास्टरानया का आर जन का छुट्टी आने से पहले ही बिदा कर दी जाती हैं ताकि वेतन न देना पड़े। भारत की अधिकांश म्युनिसिपैल्टी कंगाल हैं इसलिये वह अल्प-वेतन भोगियों के भोग से ही बचत करती हैं।

श्रीमतीजी—"और भी मेरी कई सहेलियाँ स्वावलम्बी हैं, जो मेरी सहायता करेंगी।"

मैं—"पतियों की ही जेब काट कर वह सहायता करेंगी, बयालिस रुपये आठ आने में तो सहायता करनी असम्भव है।"

श्रीमतीजी—"खैर सब भुगत लूंगी।"

मैं भी अच्छा कह कर राशन का कपड़ा लेने चला गया और कपड़ा घर पर रख कर अपने दोस्त डाक्टर के यहाँ पहुंचा।

डाक्टर ने कहा—"कसे आये। यहाँ तो बीमार ही आते हैं और फिर राजी खुशी कभी तुम भी नहीं आये।"

मैंने कहा—"बीमार तो मैं अब भी हूँ लेकिन अब की बार बीमारी लगी है घर वाली की। नारी जागरण के रूप में किसी प्रगतिशील महिला का भाषण उसने सुन लिया है और तभी से उसे डाक्टर भीमराव के बिल के पास होने की प्रतीक्षा है।"

डाक्टर से मैंने कहा कि एक खत में लिख रहा हूँ उसकी नकल करके आप भेज दें मेरे घर और थोड़ी देर के लिए अपने ऊपर के कमरे में एक पलंग डलवा कर बिस्तर लगवा दीजिए, बस काम बन गया समझ लीजिए यही इलाज है इस रोग का।

योजना तैयार हो गई। मेरे शरीर पर आठ—दस पट्टियाँ लपेट दी गई और ऊपर वाले कमरे में लिटाकर दो चार दवाओं की शीशियाँ एक टेबिल पर सजा दी गई।

खत लिखा गया और चपरासी के हाथ भेज दिया गया। खत में लिखा था—

श्रीमती सुधारानी,

जयहिन्द!

दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि अभी-अभी एक घण्टा पहले आपके पतिदेव एक मोटर और एक गधे के बीच में आकर बीच सड़क

पर दुर्घटनाग्रस्त हो गये और अब वह मेरे नर्सिङ्ग होम में पड़े हैं। बचने की अभी आशा कम है, शिशुओं की देख-भाल के लिए मैं अपनी नर्स भेज रहा हूँ। दूसरी इनकी सेवा-सुश्रुषा के लिये रहेगी। मिस जार्ज से आपके पति का पहिला परिचय भी है। वह मिलनसार हँस-मुख हैं और वह आपके बच्चों को अपना ही बच्चा समझती हैं। खाना बनाने के लिए महाराज को भेज दूँगा या वह अपने घर ही ले जाएँगी।

आपका शुभेच्छुक—
ज्ञानानन्द,
नई दिल्ली।

खत के दस मिनट बाद ही मिस साहिबा को भी सिखा पढ़ा कर भेज दिया गया।

कुछ देर में ही श्रीमतीजी मिस साहिबा और बच्चों को लेकर डाक्टर के पास आईं। डाक्टर ने पूर्व निश्चित योजनानुसार शाम से पहले किसी से भी मिलने देने में असमर्थता प्रकट कर दी।

शाम को ५ बजे आज्ञा मिली, द्वार खुला, मैंने हाय-हाय का शोर आरम्भ कर दिया।

श्रीमतीजी घबड़ा गईं—वह बोली "घर चलिये"।

मैंने कहा—"नहीं।"

उन्होंने पूछा, "आखिर क्यों?"

मैंने कहा—"मेरी हाय-हाय से नारी-जागरण के अधिवेशन की कार्यवाही भंग होती रहेगी।"

श्रीमती—"जहन्नुम में जाय अधिवेशन।"

मैं—"नहीं–नहीं, अच्छा तो यही रहेगा कि मैं मिस साहब के घर चला जाऊँ और जब ठीक हो जाऊँगा तो देखा जायगा। इस बीच में तुम्हारा अधिवेशन भी समाप्त हो लेगा।"

श्रीमतीजी—"घर पहले या नेतागिरी पहले?"

मैं—"नेतागिरी पहले घर बाद में; तभी किसी का उद्धार कर सकती हो।"

श्रीमतीजी—"मैं बाज आयी इस झंझट से, बच्चे सवेरे से भूखे हैं किसी चुड़ैल ने भी अभी तक खबर न ली मेरे बच्चों की।"

बस मैं भी पट्टी-सट्टी फेंक-फाँक कर उठ बैठा; डाक्टर और नर्स खड़े-खड़े दाँत निकाल रहे थे, श्रीमती जी का दिल और दिमाग दोनों दुरुस्त हो चुके थे।

भू-लोक के अनुभव

आलोचना की आदत का रोग इतना बढ़ गया है कि यह रोग जमीन से उठकर आसमान पर भी पहुँच गया।

भगवान् विष्णु के यहाँ एक दिन कुछ यमदूत आपस में कानाफूसी कर रहे थे। कानाफूसी क्या कर रहे थे, भगवान् की कार्रवाइयों की आपस में आलोचना कर रहे थे। उनकी आलोचनाओं का सार यह था कि भगवान् भी आजकल ला-परवाह होते जा रहे हैं और पाप-दण्ड का इनका काम अब बहुत शिथिल होगया है।

इस समय यमदूतों के पास उदाहरण के लिये कई एक नाम थे, जिन्हें वह पापी समझते थे और उन्हें तुरन्त भगवान् के कोपभाजन होने के अधिकारी मानते थे। एक नेताजी जो सदा इधर की उधर करते रहते हैं और पार्टी में फूट डाल कर अपना उल्लू सीधा करते रहते हैं, यमदूतों की दृष्टि में यह एक नम्बर के झूठे थे और तत्काल दुनियाँ से अलग कर देने चाहिये थे; परन्तु भगवान् ने इन्हें कोई भी दण्ड नहीं दिया। दूसरे कालिज के एक लम्पट प्रोफेसर हैं—पक्के धूर्त हैं, तुरन्त कालिज से कान पकड़ कर ऐसे शराबी को निकाल देना चाहिये था जो खुद शराब पीता है और लड़कों को आदेश देता है सदाचार का; लेकिन उसकी उल्टी तरक्की हुई है।

एक नाम के और काम के दोनों के भगतजी हैं। हमारे यहाँ भी उनका नाम भक्तों की ही डायरी में दर्ज है। घंटों शुद्ध मन से भगवान् का

ध्यान करते हैं, कुछ दान भी हैं करते और शहर भर में भगतजी के नाम से विख्यात हैं परन्तु पूरे हैं झूठे। बल्कि यूँ कहिये कि झूठों की यदि कोई संगठन-संस्था बन जाय तो प्रधान-पद के लिये इनसे अच्छा योग्य व्यक्ति और कोई नहीं मिल सकता। कपड़े की दलाली इनका व्यवसाय है; दिन भर दुकानदारों और ग्राहकों से झूठ बोलते हैं और नाम फिर भी भगतजी है। भगवान् भी खुश और जहान भी खुश !

उन पंडित सीतारामजी को ही देख लो कोई दिन ऐसा नहीं जाता जब वह मन्दिर में देव-दर्शन न करते हों; कोई पर्व ऐसा नहीं जाता जिस पर वह व्रत न रखते हों। उनकी धर्मनिष्ठा और कर्मनिष्ठा देखकर हम यह अनुमान लगाया करते थे कि जब हम लोग उनकी आत्मा को शरीर से अलग करके लाने के लिये भेजे जायेंगे तो हमें भगवान् से यह पूछना पड़ेगा कि उस सत्यवादी आत्मा को लाकर कहाँ रखा जाय; क्योंकि हमारे विचार से तो वह स्वर्ग-लोक से भी उच्च स्थान पाने के अधिकारी थे। परन्तु हाय रे पंडित, तूने हमारी कल्पनाओं का महल जरा-सी ही देर में रेत की दीवार की तरह किर्र-किर्र कर दिया। पंडितजी वह दुष्ट निकले कि उस दुष्टता तक तो हमारी दिमागी-दौड़ कभी पहुंची ही नहीं थी। हमारी ही क्या संसार भर की शराफत और सभ्यता भी उनके आगे से अपने कान पकड़ कर एक ओर हट गई।

हमने देखा, और भी बीसों आँखों ने देखा कि पंडितजी ने एक जवान लड़की को देखा। देखा क्या, देर तक घूरते रहे जब तक कि उसके साथ की औरतों ने पंडितजी को लानतें देनी न शुरू कीं; भीड़ जैसे ही पंडितजी के सत्कार के लिये इकट्ठी हुई कि पंडितजी साफ मुकर गये—"झूठ बात है, मैं तो भगवान् का ध्यान कर रहा था!"

हमने समझा कि बस अब पंडितजी पर बिजली गिरने ही वाली है। भगवान् भस्म कर देंगे पंडितजी को यहीं; लेकिन क्या हुआ पंडित को, लोगों ने डांट-डपट कर छोड़ दिया और पंडित सीधा अपने घर को चला

आया। बिजली तो पंडित पर क्या गिरती किसी बिजली के खम्बे तक से भी ठोकर नहीं लगी।

यह वही पंडित हैं जिनके सामने यदि कोई स्त्री भूल से आ भी जाती थी तो यह आँखें मींचकर ही सड़क पर सीताराम-राधेश्याम कहते हुए हुए चलना शुरू कर देते थे। अपनी आँख को तब तक नहीं खोलते थे जब तक कि उनके शरीर से किसी सांड का सम्पर्क न हो जाये या कोई तांगे वाला इन्हें अन्धे की उपाधि से सम्बोधित करके यह भान न करादे कि अब आपकी आंखों के सामने स्त्री नहीं कुछ और ही है। इस निश्चय के बाद ही यह अपना मार्ग आँखें खोलकर आरम्भ करते। परन्तु उस दिन—जन्माष्टमी वाले दिन अपने विचारों से ही नहीं गिरे झूठ भी बोले; फिर भी भगवान का इधर ध्यान ही नहीं।

ऐसे ही एक और सज्जन हैं। बड़े नाम धारी हैं—लेखक हैं, लेख भी लिखते हैं और किताबें भी। कैसे लिखते हैं चुरा-चुरा कर। कुछ तेरा कुछ मेरा। अपने लेखों में जब यह नये लेखकों को ललकारते हैं, तब ऐसा लगता है मानो कोई चोर, चोरों के पीछे ही चोर-चोर कहता भाग रहा हो। इसी तरह से यह लिख-लिख कर पुरस्कार मारते रहते हैं। नाम के लिये श्रमजीवी हैं, बुद्धिजीवी हैं परन्तु असिल में है बुद्धिजीवियों के चोर। इधर-उधर से खेत काटे और अनाज घर में डाला। स्वयं यदि इस बुद्धिजीवी के दिमाग में कुछ उपजता है, तो चोरी और झूठ।

दूत आपस में भगवान् की आलोचना कर रहे थे। भगवान सब कुछ सुन रहे थे, समझ रहे थे और किसी निश्चय पर पहुंचना चाहते थे। बहुत सोच-विचार के बाद भगवान् ने यह निश्चय किया कि इन्हें कुछ दिन संसार का अनुभव कराने के लिये पृथ्वी पर भेजा जाय तभी इनकी सारी जिज्ञासायें शान्त हो सकेंगी। इन्हें समझाना या अपनी सफाई देना व्यर्थ है।

निदान भगवान् ने दूसरे ही दिन सारे दूतों को बुलाया और उनसे कहा

कि मै आप में से चार दूतों को पृथ्वी पर भेजना चाहता हूँ ताकि वहां के कुछ अनुभव आपको भी हो जायें और आपके जाने से सत्य का भी कुछ प्रचार हो जाये।

दूत मंडली में से चार दूत पृथ्वी पर जाने के लिये आगे आ गये। भगवान ने उन्हें पूरे सत्यवादी और धर्मनिष्ठ बन कर पृथ्वी पर रहने का उपदेश दिया और अगले दिन भू-लोक के लिये तैयार रहने की आज्ञा दी।

रात भर चारों की अपने साथियों से बातें घुटी। बहुत प्रसन्न थे पृथ्वी पर जाने के लिये। इनकी प्रसन्नता इसलिये और थी कि भगवान् ने उन्हें भी ऋषियों की श्रेणी में रख दिया।

अपने-अपने मन्तव्य भी चारों ने निश्चित कर लिये। एक ने सत्य-वादी हरिश्चन्द्र का रिकार्ड तोड़ने का निश्चय किया, तो दूसरे ने युधि-ष्ठिर को मात देने की ठानी। तीसरे की निगाह दानवीर दधिची को परास्त करने की ओर गई, चौथे ने कविता जगत् में उतरकर सूरदास और तुलसीदास को हराने का निश्चय किया।

दूसरे सवेरे भगवान् ने मुस्कराकर चारों दूतों को पृथ्वी पर उतार दिया। दूत एक बड़े शहर के पास आकर गिरे। शहर शानदार था चौड़ी चौड़ी सड़कें, सड़कों पर मोटरों को रंगीर कतारें, इधर-उधर फूलों के उद्यान और उद्यानों में रंग-विरंगी वेष-भूषाओं में घूमते स्त्री पुरुष। इन्सान की इन कारीगरियों को देखकर दूतों के दिल प्रसन्नता से गद्-गद् हो गये क्योंकि अभी तक उन्हें इंसान की कारीगरी को ठीक तरह से देखने का अवसर मिला ही कहां था।

कुछ देर तक भगवान् का यह मिशन इंसान की कारीगरी को सड़क पर खड़ा दाद देता रहा। फिर वह एक ओर को मुड़ गया। यहां पर खूब रौनक थी कोई आयोजन होने वाला था। दूतों ने सोचा कि वहाँ चलकर भी क्यों न कुछ देखा जाये, जरूर कोई बात है तभी तो इतने

आदमी जुड़े हैं निश्चय ही वहां कोई भगवान् की कथा वार्ता होगी

दूत जैसे ही कुछ दूर आगे बढ़े ये, तैसे ही ड्यूटी के सिपाही ने टोका—

"कहां जाते हो ?"

"तमाशा देखने !" चारों ने एक साथ जवाब दिया।

"पास है ?"

"पास कैसे ?"

"भागो यहाँ से लफंगे कहीं के !" सिपाही ने डांट कर इन्हें भगा दिया।

पृथ्वी पर आकर यमदूतों को यह पहला अनुभव हुआ कि इंसान, इंसान से भी अपने तमाशे के लिये पास मांगता है और जिन पर पास नहीं होता उन्हें "लफँगा" कह कर भगा दिया जाता है; तमाशा नहीं दिखाया जाता। बहुत भूल हुई कि भगवान् से तमाशों के कुछ पास नहीं ले आये।

लफंगा की उपाधि लेकर चारों लौट तो आये पीछे परन्तु मन तमाशे को ललच रहा था। सिपाही जाने नहीं देता था इसलिये चारों ने यह योजना बनाई कि दूसरी ओर से चला जाय जहां ऐसा आदमी न खड़ा हो। योजना सफल हुई। इधर पहरा नहीं था। कुछ दूर पर एक आदमी घास काट रहा था। चारों ने निश्चय किया कि पहले उस आदमी से यह तो पता लगाया जाय कि यहाँ मामला क्या है जो इतने आदमी इकट्ठे हुए हैं।

चारों दूत माली के पास गये और उससे पूछा—

"श्रीमान्जी यहां क्या हो रहा है ?"

"फिल्मी कलाकार आये हैं उनका नाच होगा !"

"यह कौन लोग होते हैं ?"

"सिनेमा देखा है कभी ?"

"नहीं ?"

"बहुरूपिया और भांड समझते हो !"

"हाँ !"

"तब वही लोग बम्बई से आये हैं, उनका नाच होगा !"

"देखा कैसे जावे, पास तो हमारे पास हैं नहीं !"

माली जरा नेक दिल आदमी था उसने बताया कि घास तोड़ने बैठ जाओ। घास तोड़ते-तोड़ते तमाशे तक पहुँच जाना। हाथ घास तोड़ने पर रखना और आँख तमाशे पर।

चारों ने गर्दनें हिलाई, घास तोड़ना शुरू किया और घास तोड़ते-तोड़ते तमाशे तक पहुँच गये। नाच हो रहा था कोई अभिनेत्री अपनी नृत्य-कला की जी-जान से परीक्षा दे रही थीं। चारों के हाथ घास से अलग हुए और खड़े होकर लगे नाच देखने। उस समय उनको यह पता भी नहीं रहा कि वह इन्द्र के दरबार में हैं या और कहीं हैं।

इत्तफाक की बात, वही सिपाही चक्कर लगाता हुआ इधर आ निकला जिससे इनका प्रथम साक्षात्कार हुआ था। वह इन्हें पकड़ कर कुछ दूर पीछे ले गया और इसने फिर इनसे वही पुराना प्रश्न किया घास वाला और इन्होंने वही उत्तर दिया पहिले वाला 'क्यों आये' का भी उत्तर वही था पुराना—'तमाशा देखने।'

अब की बार सिपाही और बिगड़ा—

"तकदीर भी बनवाकर लाये थे तमाशे देखने वालो ?"

"नहीं !"

"चलो चारों को बन्द करूंगा हवालात में !" सिपाही बिगड़ा।

चारों दूत उसके पीछे-पीछे चल दिये; आपस में कह रहे थे—

"अजीब हाल है यहाँ का, तमाशे के लिये पास लाओ, तकदीर बनवा कर लाओ। यह सब कुछ तो अच्छा नहीं लगता। बड़ी भूल हुई आते समय न पास लाये न तकदीर ही तमाशे की बनवा कर लाये।

सिपाही चारों को लेकर इंस्पैक्टर के पास आया। इंस्पैक्टर महोदय सवेरे से भूखे-प्यासे झुंझलाये खड़े थे। सिपाही ने सैल्यूट देकर चारों को आगे किया।

"कौन हैं ये ?" दरोगा जी बोले।

"सरकार गिरहकट मालूम होते हैं !" सिपाही ने अपना अनुमान बताया।

"कहाँ थे ये ?"

" डांस टैंट में ! हुजूर यह पहले भी घुस रहे थे इन्हें मना किया था और भगा दिया था फिर भी न जाने कुछ देर बाद किधर से घुस आये !"

"क्यों बे, कौन हो ?" दरोगाजी बोले।

"यम के दूत हैं !"

"सो तो तुम्हारी सूरत ही बता रही है, पर हम पुलिस के भूत हैं। कमबख्तो सारा शहर मारा गया था, जो यहाँ आ मरे मेरी नौकरी छुड़वाने।"

"हम जेबें काटने नहीं आये !"

"इनाम बाँटने आये थे ?"

"तमाशा देखने !"

"दिखाऊँ तमाशा—" लो देखो—कहकर दरोगाजी ने चट्ट से एक यमदूत के गाल पर एक चाँटा रसीद कर दिया और दूसरे को हाथ का रूल मारा, तीसरे के एक ठोकर जड़ दी। चौथे को धक्का देते हुए दरोगाजी ने कहा—"निकालो सालों को यहां से नहीं तो और तमाशा दिखलाऊँगा।"

चारों पिटपिटाकर बाहर आ गये और आगे चल दिये।

कुछ दूर जाने पर एक ओर झंडे-झंडियाँ लगी हुई थीं। कुर्सी-मेज बिछ रही थीं लोग आ-आकर उन पर बैठते जाते थे।

राह चलते एक आदमी से इन्होंने पूछा—"यहाँ क्या होगा जी ?"

राहगीर ने इन्हें बतलाया कि दूर देश के एक प्रधानमन्त्री आये हैं—तमाशा होगा।

तमाशा शब्द से फिर मुँह में पानी भर आया और पिटाई भूल गये। लगे फिर कहीं से घुसने की योजना बनाने। फिर एक ओर से घुस गये और चपरासी के पास जाकर खड़े हो गये। चपरासी से इन्होंने अपने दिल का सच्चा हाल बता दिया कि भाईजी हम पर पास तो है नहीं और तकदीर भी हमारे पास तमाशे वाली नहीं है परन्तु हम तमाशा देखना चाहते हैं।

पहले तो चपरासी ने इन्हें सर से पैर तक घूरा और बाद में यह समझकर कि कोई ऐरे-गैरे नत्थू-खैरे होंगे, अपना क्या जाता है; इनसे कह दिया कि देखलो खड़े-खड़े। कोई पूछे तो कह देना हम तो सामान ढोने वाले मजदूर हैं अभी हमें पैसे नहीं मिले हैं।

"झूठ तो हम नहीं बोलेंगे ?" चारों ने जवाब दिया।

"तब तुम जानों, अपनी जिम्मेवारी पर तमाशा देखो।"

बहुत दूर खड़ा एक सी. आई. डी. इंस्पैक्टर इन्हें ताड़ रहा था। वह पास आया और इन्हें अपने साथ कुछ दूर पीछे ले गया।

"आपके पास पार्टी-पास हैं ?"

"नहीं।"

"कहां से आये हो, रामपुर से या बरेली से ?"

"भगवान् के यहाँ से।"

"वहीं भेज दूं कहो तो ? पर पहले यह बताओ अफीम बेचते हो या कोकीन ?"

"कुछ नहीं।"

"औरतें भगाने का काम करते हो ?"

"नहीं!"

"अबे तो कुछ करते भी हो या मिलें चलती हैं तुम्हारे बाप की ?"

"कुछ भी नही करते ।"

अच्छा अब समझा पहिले ही क्यों न बता दिया कि हराम की खाते और मस्जिद में सोते हैं—कम्यूनिस्ट हैं। जेब में पर्चे हैं या बम हैं, तलाशी दो। तलाशी ली गई वहां धरा ही क्या था। यह निश्चय करके कि वास्तव में यह कम्यूनिस्ट नहीं हैं इंस्पेक्टर ने निकाल दिये।

"भाग जाओ यहाँ से, यदि फिर परछाई भी दिखाई दी तुम्हारी तो सारी तमाशबीनी निकाल दूँगा।" साथ ही अन्तिम चेतावनी भी दे दी इंस्पैक्टर ने।

वहाँ से भी धक्के खाकर चारों ने बाजार की ओर रुख किया। भूख लग रही थी। खाने की इच्छा हो रही थी। बाजार में एक जगह लिखा था—"शुद्ध भोजन के लिए पधारिये !" बड़े खुश हुए चारों। सोचने लगे कि जरूर किसी धर्मात्मा का यह काम है। चलो इस दुनियाँ में एक भगत तो ऐसा भगवान् का निकला जो बुला-बुलाकर भोजन कराता है।

चारों दूत अन्दर चले गये। बड़े प्रेम और सत्कार से होटल के नौकरों ने भोजन कराया और इन लोगों ने भी प्रेम से ही भोजन किया। भाजन करते जाते थे और होटल के मालिक के गुण गाते जाते थे।

भोजनोपरान्त चारों के सामने एक-एक खाने का बिल रख दिया गया। बिल देखकर चारों ने एक दूसरे को देखा और होटल के नौकर ने चारों को एक निगाह से देखा।

"ढाई-ढाई रुपया दीजिये खाने के बिल का !" नौकर बोला।

"हमारे पास तो हैं नहीं पैसे।"

"तब खाने के लिये कैसे चले आये ?"

"तुम्हारा बोर्ड देखकर चले आये उसमें खाने के लिये आना ही लिखा है और कुछ तो लिखा नहीं।"

नौकर ने मैनेजर को सूचना दी कि साहब चार आदमी दाम नहीं दे रहे हैं।

मैनेजर आये दाम मांगे तो उत्तर उनका फिर भी वही था कि दाम तो नहीं हैं।

"पागलखाने से आये हो या जेलखाने से ?" मैनेजर ने पूछा।

"भगवान् के यहां से।"

"तब ठीक है। जाइये तशरीफ ले जाइये वरना पुलिस के हवाले करूँगा।"

डकैत मालूम होते हैं रामसिंह मैनेजर ने नौकर से धीरे से कहा, जाने दो। आज इनके पास पैसे नहीं हैं, कल जब कहीं हाथ मार लायेंगे उल्टा तुम्हें इनाम भी इतना दे जायेंगे कि कोई रईस भी नहीं देसकता।

नौकर इन्हें बाहर कर आया और यह फिर बाजार में आ गये। बाजार में आने पर अब एक नया प्रश्न और सामने आया कि रात को सोया कहाँ जाय ? मंदिर तो जागीरें बनी हुई हैं जहां नौकरी पर भगवान् की पूजा कराई जाती है। २५-३०) रु० का एक पुजारी रख लिया बाकी जायदाद के मालिक दूसरे होते है। यह हाल है शहर के मंदिरों का और जगलों के मंदिरों का और भी बुरा है। वह मंदिर न रह कर पशुओं की धर्मशाला बन गये है।

चारो बड़े परेशान हुए क्योंकि धर्मशालाओं मे जगह नहीं मिली। मंदिरों में जहाँ-जहाँ गये वहीं पुजारियों ने कह दिया कि सेठजी की पर्ची बगैर नही टिक सकते।

अन्त में सोच-विचार कर यही तय किया कि रात को दुकानों के आगे की पटरी पर ही लेट लगाई जाये और कल इस मामले पर विचार किया जाये।

एक अच्छी सी जगह देखकर चारों लेट गये। लगभग १२ बजे उस वक्त आँख खुलीं जब कि एक सिपाहीराम अपनी ठोकर लगाने की आदत

का अभ्यास इनके शरीरों पर कर रहे थे।

"उल्लू के पट्ठे इतने आराम से सो रहे हैं, गोया घर की चौपाल हो, उठते हो कि और ठोकर लगाऊँ ? बोलो कहां से आये हो कौन सी गाड़ी से आये हो ?"

"हम भगवान् के यहां से आये हैं।" दूतों ने जवाब दिया।

"बिना मां बाप के ही आये थे ?"

"जी हाँ !"

"शाबाश बेटा, रात को कितने ताले चटखाते हो ?" सिपाही ने उत्तर देने वाले दूत से पूछा।

"हमारा काम भगवान् की आज्ञा मानना है ताले तोड़ना नहीं।"

"मेरा काम थानेदार का हुक्म बजाना है कि तुम्हारे जैसा यदि कोई उचक्का मिले तो या तो उसे पीटपीट कर भगा दूं या हवालात में बन्द कर दूं, और तुम हो यहाँ एक की जगह चार। जाओ यहाँ से स्टेशन चले जाओ और यदि टिकट के दाम न हों तो बे-टिकट ही भाग जाओ। थोड़ी देर में गश्त के लिये दरोगाजी आते होंगे, कसम तुम्हारी बड़ा जल्लाद आदमी है अच्छे-अच्छे शहर के बदमाश कांपते हैं उससे तुम्हारी क्या बिसात है, भाग जाओ।" सिपाही ने उन्हें स्टेशन की ओर भगा दिया पटरी से।

चारों आंखें मलते हुए स्टेशन को चल दिये कि अब क्या किया जाय। यहां का हाल तो बहुत बुरा है। तमाशे के लिए पास, खाने के लिये पैसे और सोने के लिए ठोकरें। वाहरे इंसान, तेरी शान और तेरा शासन हैवानों से भी बदतर। अच्छा था भगवान् तुझे बुद्धि ही न देते तब हैवान हैवान तो रह जाता अब हैवान से भी आगे जा चुका है।

कुछ देर विचार-विमर्श के बाद इन्होंने यह तय किया कि चलो फिर शहर ही चलें और पंडितजी के यहां रहकर इस नगरी में सत्य और धर्म का प्रचार करें।

एक बजे रात को इन्होंने पंडितजी को जगाया। पंडितजी को सारी बातें बतायीं। पंडितजी देवदूतों को अपने यहां रखने को तैयार हो गये।

पंडितजी ने उन्हें रख लिया और यह आदेश दिया कि आप शौक से रहें परन्तु यहां किसी युवती की ओर न देखें यदि देखें भी तो जरा यूं ही देख लिया और ध्यान हटा लिया, ऐसी निगाह करली जैसे आपने कुछ देखा ही नहीं।

"तो क्या युवतियों के देखने के लिये भी पास लेना पड़ता है ?"

"नहीं देखादेखी फ्री पास है परन्तु फिर भी हमारे तुम्हारे लिये ठीक नहीं !"

देवदूत मान गये, पडितजी के यहां रहने लगे। भगवत् भजन और सत्संगों का शुभारम्भ हुआ। दो-तीन दिन बाद एक पूजा-दिवस आया पडितजी चारों को लेकर देव-दर्शन के लिये चले।

बस वहाँ स्त्रियो की रग-विरंगी छटा को देखकर दूत फिर भूल गये कि जमीन पर हैं या आसमान पर; लगे एक युवतीके सौंदर्य की प्रशसा करने।

अपनी पत्नि के इन नये प्रशसकों को जब पति ने देखा तो उबल पड़ा और वालंटियरो को बुलालाया।

"कौन हो तुम ?" एक वालंटियर ने पूछा।

"हम देवदूत हैं जी !"

"तो दूतजी यहाँ किसके प्राण लेने आये थे ?"

"देवदर्शन के लिये आये थे ?"

"या नारी-दर्शन कर रहे थे ?"

"प्रशंसा कर रहे थे एक स्त्री के सौदर्य की ?"

चलिये अब आपकी प्रशंसा करा लायें, यह कहकर दो तीन कांस्टेबल को बुलाकर वालंटियरों ने दूतों को सौंप दिया। सिपाही उन्हें थाने ले आये, थानेदार वही नाच के स्थान वाले पहले ही परिचित थे, बड़े

तपाक से मिले। सिपाही को बाहर भेज दिया। बड़े प्रेम से बैठाये गये। दूत बड़े प्रसन्न हुए कि या तो अब इस व्यक्ति के अन्दर भक्ति-भाव जाग उठा है या यह हमे पहचान गया जो इतना आदर कर रहा है।

कुछ देर आव-भगत करने के बाद थानेदार ने दूतों से मतलब की बातें शुरू कीं। सिपाही यह बता ही गया था कि यह पंडितजी के साथ रहते हैं, पंडितजी एक दिन एक लड़की को छेड़ने पर पिटे भी थे और यह लोग कई दिन से शहर में आये हुए हैं।

थानेदार ने कहा—"देखो दोस्त हम पुलिस वाले हैं हम से तुम्हारी बात तो क्या भगवान् भी बात नही छिपा सकता कुछ। जो पूछूँ सच बताना वरना फिर जानते ही हो। लो बताओ तुम्हारे गेग (दल) में कितने आदमी हैं, और कहां-कहाँ काम करते है।"

"हमारे दल में सैकड़ों आदमी हैं और दुनियाँ में सब जगह काम करते हैं ?"

"डाके डालने में कितने आदमी लगे है और औरतें उड़ाने में कितने ?"

"हमारा इन चीजों से क्या वास्ता ? हमारा काम तो आत्मा को शरीर से अलग करके ले जाना होता है ?"

"शाबाश ! तो यूँ कहो कि तुम तो अपने दल के जल्लाद हो ?"

"जल्लाद नहीं देव-दूत हैं।"

"अच्छा यही सही; पर यह तो बताओ कि सुजालपुर डकैती केस में कौन-कौन थे और उसका रुपया कहाँ है और दिल्ली से रामकली को उड़ाकर कहाँ रखा है ? तुम्हारी कसम तुम जानोगे या मैं। मैं तुम्हें साफ छुड़वा दूंगा चारों को; सच-सच बता दो।"

"हम आपको भगवान का राज तो बता सकते हैं, परन्तु इन बातों का हमें पता नहीं।"

"भगवान् के राज से ज्यादा जरूरत तो मुझे इन दो बातों के राज की है। वैसे सुन लूँगा भगवान् का भी राज; पर पीछे से।"

"हमें कुछ मालूम नहीं।"

"अच्छा तो तुम यूँ नहीं बताओगे। बदलू-बदलू ! सालों के हथकड़ियां लगाकर जरा मुर्गा बनाकर उड़ा बेंत और छोटे से कह दे उस पंडित को बुलाकर हवालात मे बन्द करदे।"

बदलू आये चारों को मुर्गा बनाकर पीटा गया और छोटे ने पंडितजी को हवालात दिखाई। काफी पिटाई के बाद बदलू ने कहा—दरोगा जल्लाद है बता दो सच, छोड़ भी देगा। लो मैं उन से कहआता हूँ कि आपसे फिर बात करने को तैयार हैं।" इतना कहकर बदलू थानेदार के पास गया और चारों को दरोगाजी के पास छोड़कर अपने आप बाहर चला आया।

"आगये ठिकाने पर अब बताने जाओ जो मैं पूछता हूँ।"

"किस थाने पर तुम्हारी हिस्ट्री-शीट खुली है ?"

"किसी पर नहीं।"

"कभी जेल क़ादी है ?"

"नहीं ?"

"डाके का रुपया कहाँ है ?"

"पता नहीं ?"

"बतादो में पूछकर ही मानूँगा ?"

"हम आपको ईश्वर की महिमा और भक्ति का सार बता देंगे। भगवान् के भक्त बनो।"

"यह तो मैं खूब जानता हूँ और भगवान् का भक्त भी बन जाऊँगा पर पहले मुझे दोनों बातें बतादो। शाम को कप्तान आने वाला है।" दरोगा जी बोले।

"बदलू, अरे चल यह तो साले पाजी हैं पूरे। उल्टे करके लटकवा दो और मेरा हन्टर लाओ।" दरोगाजी का क्रोध उबला।

"अच्छा, जरा भगवान् से हमें प्रार्थना करने दो कि हमें कुछ देर उल्टा लटकने की सामर्थ्य दे, हम पूजा करलें।" दूतों ने दरोगाजी से फरियाद की।

"मै तुम्हें जितनी देर की ताकत माँगोगे उससे ज्यादा देर लटकाऊँगा।"

अब दूतों के दिल टूट गये, उन्होंने भगवान् से प्रार्थना की कि हे भगवान् भू-लोक के अनुभव हो चुके, तुम्हारी माया तुम जानों पर हमें यहाँ से निकालो।

अचानक जेल धड़ाम से गिर गई। दूत और दूतों के साथ पंडितजी भी गायब हो गये।

दूसरे दिन अखबारों में छपा—"जेल पर डाकुओं का हमला, जेलखाना तोड़कर अपने साथियों को छुड़ा लिया गया, थानेदार घायल, पुलिस की दौड़ धूप।"

दूत भू-लोक के अनुभव लेकर कभी के स्वर्ग-लोक जा चुके थे।

सुसराल के वह दिन

शुद्ध देवनागरी भाषा में, जिसमें केवल मात्राओं का ही दोष था, अपनी दर्जा तीन पास श्रीमतीजी का एक दुअन्नीवाला लिफाफा कल, जो आधा मेरी क्षेम कुशल विभिन्न देवताओं से मनाते हुए भरा गया था, तथा अन्य घरवालों के आशीर्वादों आदि से लदा हुआ मुझे मिला था।

लिफाफा क्या था निमंत्रण पत्र था अतः जाना आवश्यक ही समझा। इसलिये ५०) एक यार से उधार लिए और दफ्तर को भेजा हैजे का एक ५) खर्च करके मेडीकल सार्टीफिकेट।

बाजार से एक दुअन्नी की बिन्दीवाली शीशी और चवन्नी की ओठों के किनारे रंगने वाली एक शीशी ली तथा अठन्नी का एक चूनाकारी का डिब्बा खरीद कर स्टेशन की ओर पैदल ही क्विक-मार्च किया।

गाड़ी ठसा-ठस भरी थी। कुछ आदमी ऊपर की सीटों पर कबूतरों की तरह सामान के पुलन्दों पर बैठे थे तो कुछ के सामान के पुलन्दे मानव शरीरों को ढंके पड़े थे।

हमने गार्ड के कमरे से इन्जिन तक दस चक्कर लगाये। हर एक डब्बे का आदमी आगे जाने की सलाह देता था, और दूसरी गाड़ी के खाली ही छूटने की भविष्यवाणी करता था।

हिम्मत से काम लेकर मैं दरवाजे से सटे आदमी को धकेल कर अन्दर घुसा। अन्दर कोई स्थान खाली नहीं था, एक खाली स्थान था भी तो उसका एक खाल्साजी सदुपयोग कर रहे थे पैर लम्बे किये हुए। किसी

तरह गाड़ी का समय हुआ, एंजिन एक बार धक्का देकर आगे बढ़ा।

एंजिन के बढ़ते ही एक सज्जन खड़े हुए, उन्होंने बताया कि हमारी कम्पनी का कैमिकलवर्क्स पाकिस्तान में छूट गया और हम पिटकर यहां आ गये अब हमने लाजपतराय मार्केट में नीम का सत निकाल कर यह मंजन बनाया है। बाद में उन्होंने अपनी दन्त विज्ञान सबन्धी जानकारी आधा घण्टे तक बताई और मैंने उनकी जगह कब्जाई।

उनके बाद मण्डी बांस मुरादाबाद का हवाला देते हुए सौंफ पर चीनी चढ़ाने की पद्धति और उसके लाहौर में विराट प्रचार पर एक और सज्जन ने एक छोटा सा वक्तव्य देकर ५-६ आने की मजदूरी की।

इसी तरह कोई दांत उखाड़ने वाले, कोई कान ठीक करने वाले बीसों आदमी एक के बाद एक आते रहे और अगले स्टेशन पर दूसरे डब्बों में जाते रहे।

अब मैं बिल्कुल निश्चिन्त भारतीय राजपूतों की तरह राज्य खोकर बेफिक्र बना बैठा था। अक्कलगढ़,जहाँ मुझे जाना था, ३५० मीलदूर था। २०० मील रेल में, १०० मील मोटर पर ५० मील ऊँट पर जाना था।

अक्कलगढ़ का निर्माण किसने कब किया था, यह तो पता नहीं हां, वहां पुरातत्ववेत्ताओं को मौर्यकालीन, बुद्धकालीन, मुगलकालीन आदिसे लगाकर शक और हूण कालीन तक के अवशेष मिले हैं।

रात भर गाड़ी में लदे-लदे दूसरे दिन मुर्गों के बोलने के कुछ बाद स्टेशन पर उतरा और दोपहर की एक मोटर में फिर लद गया।

मोटर शायद वह थी, जो भारत में सबसे पहले आयी थी; जगह-जगह आदमी उतर कर उसे धकेलते और फिर वह अपने आप धिकलती। प्रत्येक मील पर दो गैलन पानी और छठे मील पर २ गैलन पैट्रोल उसके मुंह में डालना पड़ता, क्लीनर पीछे की बजाय आगे गाड़ी के दो तारों को पकड़े बैठा रहता। किसी तरह राम-राम करके गाड़ी अपने स्थान पर पहुंची। वहाँ मैंने एक पनवाड़ी की दुकान में रात बिताय

और उसी ने यात्रा के अन्तिम भाग को सानन्द समाप्त कराने के लिए अरब के ऋषिराज—ऊँट का प्रबन्ध किया।

ऊँट के पिछले भाग पर मुझे चढ़ाया गया। यह समझो, लटका दिया गया, उसके अगले भाग पर कुछ सामान लटक रहा था।

कुछ मंत्रसा अपने मालिक के इशारे पर अपनी संस्कृति के अनुसार, पहले बैठे-बैठे ही ऊंट ने पढ़ा और फिर नमाज की तरह पृथ्वी को प्रणाम कर एक घृणा और तिरस्कार को लिएं हुए अपना पैर आगे को बढाया।

अभी कुछ दूर ही जंगल में गये थे कि खाँखरा बंधी एक भैंस सामने आयी। भैंस ऊंट को देखकर घबराई और उसके खाँखरे की आवाज से ऊंट घबराया। दोनों की ही घबराहट मेरे लिये मंहगी पड़ी।

ऊंट खांखरा की आवाज से एकदम उछला। मैं उछलकर उस पर गिरा तब वह और मुझे उछालकर तेजी से भागा, यदि वहाँ रेत न होता तो अपने राम अल्लाताला के दरबार में कयामत से पहिले ही पहुंच गये होते।

गिरते-पड़ते किसी तरह अक्कलगढ़ की पुण्य भूमि को अपने चरण कमलों से मैंने पवित्र किया, ऊंट से सामान उतारा गया। हमारे लिए एक चारपाई डाली गयी।

चारपाई पर मुझे अपने को डाले अभी १० मिनट भी न हुए थे कि महिलामंडल की संवादवाहिनी संस्थाओं ने आनन--फानन में ही मेरे गाँव में घुस आने की घोषणा घर-घर करदी।

घोषणा का प्रभाव शीघ्रगामी हुआ और बुढ़ियों से लगाकर बहुएं तक मुझे देखने इसी उत्सुकता से आईं जैसे कोई नया थानेदार उत्सुकता से किसी कम्युनिस्ट को देखता है।

कुछ बच्चे मेरे कपड़ों से खिलवाड़ कर रहे थे तो कुछ औरतें मेरे स्वास्थ्य पर दुःख प्रकट कर रही थीं, कुछ मेरे स्वभाव की आलोचना किसी प्रगतिशील लेखक की तरह कर रही थीं।

इसी तरह दो दिन बीत गये। आज तीसरे दिन मैंने सुसराल के मैदान से अपने हटाने का ऐलान किया। इसलिए गाँव भर की सारी औरतें कपड़े बदल-बदल कर फिर एक बार मुझे विदा देने के लिये अपने-अपने संस्करणों सहित आ धमकीं।

सारा घर विदाई के काम में लगा था। अपनी श्रीमतीजी भी शादी के पहले के अपने शृंगारिक-संग्रहों को सुरक्षित कर रही थी। गाँव में आने वाले बिसातियों से खरीदे गये कंघा—कंघी, आमल का तेल, माथे की बिन्दी, करोशिया, भजनों की पुस्तक, हरी-पीली धोतियां, मोर और कबूतरों की कशीदाकारी वाले पेटीकोट बक्स मे बन्द किये जा रहे थे।

मकान के एक कोने में एक थाल में कुछ रोली, कुछ बादाम, एक नारियल और एक गोला और थोड़े से चावल पड़े थे, जिनका सदुपयोग मुहल्ले की महिलाओं के साथ आये छोटे-छोट शिशुओ के हरावल दस्ते कर रहे थे।

दो तीन छोटी-छोटी पुत्रियों ने अपने मुंह-नाक और कान रोली से रंग लिये थे और ३—४ होनहार शिशुओ ने बादामो को ठिकाने लगा दिया था। एक समझदार लड़के ने थोड़ा सा गोला तो स्वय खा लिया था और शेष को वह उदारता पूर्वक अपने अन्य बुजदिली गरीब मित्रों को बांट रहा था।

तभी एक चंचल नारी के चंचल नेत्र उधर गये पर तब तक सारे थाल की सद्गति हो चुकी थी। दूसरा विदाई थाल तैयार किया गया।

कुछ देर नारी-उपदेशामृत सुने और अन्त मे यह शपथ भी ली कि इस महायात्रा के बाद जल्दी-जल्दी आकर अपने शरीर का सत्यानाश यहाँ कराता रहूँगा।

सवारी में फिर भी ऊंट मिला। देवीजी पीछे और मुझे आगे लादा गया। पहले तो उन्होंने मुझे पकड़ने का विरोधाभास दिखाया लेकिन दो चार कदम के बाद ही ऊंट की कृपा से उन्हें विवश होकर अपना निश्चय बदलना पड़ा।

लारी भी वही मिली और उसने उसी तरह फिर धक्के लगवाये। गाड़ी में भी वही हाल था इसलिए उन्हें जनाने डिब्बे में सवार करा दिया और मैं फिर एक डिब्बे में पहले की तरह ही घुसा।

दिन निकलने पर चाय लेकर उनके डब्बे के आगे पहुंचा तो बड़ी कठिनाइयाँ सामने आयीं। उन जैसी ही उसी वेशभूषा में एक और नवयुवती भी वहीं पर मौजूद थी। चाय किसे दूं यह समस्या थी। लेकिन बुद्धि ने साथ दिया और मैंने चाय दोनों के पास ही रख दी दूसरी शायद अधिक समझदार थी वह इत्मीनान से सारी चाय पर हाथ साफ कर गयी।

अगले स्टेशन पर दूसरी देवीजी के पति पहुंचे तो वह भी चक्कर में पड़े कि मिठाई किसे दी जाय। कुछ सोच-विचार कर वह भी मेरे ही पदचिन्हो पर चले और वह मिठाई मेरी घरवाली ने अपनी समझी।

खैर, मिठाई और चाय की बात बीत गयी लेकिन अब नई दिक्कत सामने यह थी कि यदि दूसरी जोड़ी पहले ही उतर गई तो कही ऐसा न हो कि जोड़ियों का पुनःनिर्माण अपने आप ही हो जाये।

लेकिन वह जोड़ी भी दिल्ली तक ही साथ आई। दिल्ली में हम दोनो ने जल्दी ही जनाने डब्बे को जा घेरा और उधर उन दोनों घूंघटबाजो ने भी जल्दी ही डब्बा खाली कर दिया, प्लेटफार्म पर आ खड़ी हुई।

अब मैं कुली बुला रहा था और इस चक्कर में था कि किसे साथ लेकर चलूं। ऊंचे स्वर से मैंने कहा कि पता नही अक्कलगढ़ में ही क्या विशेषता है कि वहाँ का ऊंट तक अक्लमद है।

अक्कलगढ़ और ऊंट का नाम सुनते ही अपनी असली घरवाली मेरे सामने खिसक आयी।

किराये का कमरा

आपने और लाला नन्दराम के बीच मध्यस्थ द्वारा यह तय हुआ था कि लाला जी सोमवार की शाम को अपने बाल-बच्चों के आराम को मिट्टी में डाल कर ऊपरवाली बरसाती और नीचे वाला कमरा मुझे दिखा देंगे और हां, या ना, के साथ ही ८००) पगड़ी के और ४८) प्रथम मास की प्रथम किश्त के घर ही गिन लेंगे।

शहर में रहने को मकान मिल जाय तो ऐसा है, मानों आदमी को स्वर्ग मिल गया फिर भले ही वह मकान उसको साक्षात स्वर्ग ही पहुंचाने में सहायक क्यों न हो जाय। अतः नियत समय पर मैं लाला की दूकान पर पहुंचा और लाला मुझे लेकर घर पहुंचे।

घर नया था, अच्छा खासा करौलबाग दिल्ली का सुरंग था। पहिले दरवाजे और अन्तिम दरवाजे के बीच में पांच चौखटें और जड़ी हुई थीं।

पहली और दूसरी चौखट के बीच के स्थान पर शाम को लालाजी की गाय बंधती थी और दिन में लालाजी उसे गलियों के भ्रमण के लिए स्वतन्त्र कर देते थे।

दूसरी और तीसरी चौखट के बीच के स्थान पर लालाजी की दादी का अधिकार था और वह स्थान शायद उसने यह सोचकर चुना था कि कदाचित यहां तक यमदूतों की आँख न पड़ सकें।

तीसरी और चौथी चौखट के मध्य के स्थान पर सेठानीजी की चक्की सुशोभित थी, जिसका उपयोग वह रात के २-३० या ३ बजे से ही करना आरम्भ करके मुहल्लेवालों की नींद भगाया करती थीं और लालाजी के स्वास्थ्य और धन की वृद्धि करती थी।

अंतिम चौखट के पास टट्टी थी और टट्टी के बाहर नल था। नल के पास जीना था जो कई एक विभिन्न राहों को पार करता हुआ मुझे दी जानेवाली बरसाती पर जाकर समाप्त होता था।

बीच मे कमरों की कतारें थीं। कमरे भी डबल छत वाले थे, पूरे कबूतरखाने; शायद आदमी के कद के पूरे नाप के ही बनवाये गये थे। लगभग २०-२२ परिवार उस मकान में पड़े थे और २-४ को छोड़कर प्रायः सभी लालाजी को लम्बी पगड़ी देकर उसमें घुसने में सफल हो सके थे।

कोई किसी मिल में काम करता, कोई खोंमचा लगाता तो कोई लालाओं की दुकान पर मुनीम था। उस छोटे मे मेले को देखते-देखते मैं और लालाजी जीने पर आगे पीछे चढ़े और चढते-चढ़ते ऊपर की मंजिल वाली बरसाती तक पहुँच गये।

बरसाती वया थी, अच्छा खासा गुसलखाना था, अन्तर केवल इतना ही था कि गुसलखाना सब ओर से बन्द रहता है और बरसाती सब ओर से खुली थी।

बरसाती दिखाने के बाद लालाजी ने कमरा दिखाया। कमरा बाहर की ओर था, एक दर्वाजा गाय की ओर एक था अन्दर की ओर। अन्दर की ओर वाले का पता नहीं भगवान् जाने किसी किरायेदार के घर खुलता था या लालाजी के घर तक की खबर लेता था।

अब लालाजी से पैसों की बात चली, १००), १००) के आठ नोट लालाजी के हाथ पर धर दिये गये और लालाजी ने जैसे के तैसे वीतराग सन्यासी की भाँति लालाइनजी की ओर बढा दिये।

लालाइन ने नोटों को लिया, माथे से लगाया और फिर भगवान् जाने कहाँ गायब कर दिया।

अगले दिन अपना बोरिया-बिस्तरा मैं लालाजी के मकान में उठा ले गया।

दूसरे दिन लालाजी फिर सवेरे ही आये और बोले—"बाबूजी, बच्चो को नही लाये।"

मैंने कहा—"किसके ?"

"अपने।"

"क्या बच्चे आपके मकान में लाना जरूरी ही होता है ?"

"जरा अपने बच्चों का मन भी बच्चो से लगा रहता है ?"

"मैंने मकान किराये पर लिया है न कि आपके बच्चों के मन बहलाने की गारंटी !"

"मेरा मतलब यह था कि मैं दूकान पर और आप अपने काम पर चले जाते हैं, तो मेरे ही बच्चों को देखलो किस तरह समय बिताते होगे ?"

उस दिन लालाजी से और कुछ बातें नही हुई, मै अपने काम पर चला गया और लालाजी अपनी दूकान को। शाम को लालाजी ने फिर जी लगने वाली बात छेड़ी।

मैंने बताया आपकी प्रथम चौखट से लगाकर आखिरी चौखट तक सब जी लगने का ही सामान है। पहले गाय और गाय की सन्तानों से जी लगाया जा सकता है, दूसरे दर्जे मे बुढ़िया दादी का खटोला है, सेठानी यदि चाहें तो दो चार मिनिट 'यमदूत-कथा' उन्हें सुना सकती है और तीसरी श्रेणी में उनकी 'जगत-जगाऊ' चक्की लग रही है। उसके बाद दिन भर किरायेदारनियों के कथित अत्याचार के ही प्रतिकार से उन्हें फुर्सत कहाँ मिलती होगी।

लालाजी से पीछा छूटा तो रात को इन्द्र भगवान् से टक्कर हो गई;

जितनी बूँदें आसमान से गिरतीं, उनकी दुगनी बनकर बरसाती में घुसतीं। पहिले कुछ देर तो चारपाई इधर से उधर घुमाता रहा; अन्त में जब घुमाई से भी बचाव न हुआ तो खाट के नीचे बिस्तर लगाया।

बारिश तो थी ही, बारिश से भी तेज थी तूफानी हवा। एक बार जो जोर का झोंका आया तो बरसाती की टीन उड़ चली और उसने जाकर बिजली के खम्भों की शरण ली।

अब अपनी चारपाई से सुरक्षा की आशा करना बेकार था इसलिए चारपाई को राम आसरे छोड़ नीचे उतर आया।

नीचे आकर भी सोने की आशा बेकार थी; क्योंकि सारे दरवाजे खोल देने पर भी मालूम होता था कि निश्चय ही लालाजी के समझदार पूर्वजों ने विषम ज्वर बिना दवा के उतारने के लिये इसे बनाया था।

बारिश अब भी जारी थी, उसी समय किसी किरायेदार की औरत को बिच्छू ने काट खाया। उसकी चीखों को सुनकर भी यदि कोई सोने की हिम्मत कर जाय तो इतना हिम्मतवर कोई था ही नहीं।

सवेरे दिन निकलने पर लालाजी ने उड़ी हुई टीन का मुआयना किया और मैंने लालाजी से अपनी दी हुई आधी पगड़ी लौटाने और आधी किस्त वापिस देने की समझाई; लेकिन लालाजी अगले दिन ही ठीक कराने का आश्वासन देकर चले गये।

आज बरसाती को ठीक कराये तीन दिन ही कठिनता से बीते थे कि म्युनिसिपिलबोर्ड वालों की निगाह मे लालाजी की चारसौबीस खटक गई, क्योंकि उन्होंने उन्हें बिना दक्षिणा दिये और बिना नक्शा पास कराये इस नई आमदनी का आविष्कार किया था।

बोर्ड वाले ऊपर गये और ऊपर जाकर उन्होंने उस बरसाती का विध्वंस कर डाला साथ ही लालाजी पर मुकदमा चला और मुकदमे के जुर्माने में लालाजी को ठीक उतने ही पैसे देने पड़े जितने मैंने उन्हें दिये थे।

इधर तो लाला मुकदमे से निपट कर लौटे और उधर लालाजी की छोटी साली अपने मामा के यहाँ से विद्याध्ययन करके लौटी।

छोटी साली की जिद यह थी कि बैठक मेरे पढ़ने के लिये खाली करा दी जाय। लालाजी ने पहिले तो लाभ वाली बात की याद दिलाई और उसके बाद भी जब बात उसकी समझ में न आई तो एक सुझाव रखा कि रात को अधिकार किरायेदार का और दिन को अधिकार तुम्हारा—ऐसा फैसला किरायेदार से कर लिया जाय; परन्तु सालीजी की जिद यह थी कि वह दिन और रात की बंदिश में बँधने को तैयार नहीं।

अन्त में शाम को लालाजी ने बैठक खाली करने का प्रस्ताव मेरे सामने रखा और मैंने उनके सामने पगड़ी की पगड़ी और उसके साथ छोटी सी टोपी का उत्तर रख दिया।

दिये ८००) और मांगे १२००)। चार दिन में ही ४००) चले तो लालाजी बहुत घबराये।

दूसरे दिन फिर उन्होंने अपनी साली को मनाया और यह फैसला तय हुआ कि लालाजी पगड़ी की रकम लौटा देंगे, दिन में उसमें साली आ-जा सकेगी, सवेरे सफाई बैठक की साली करेगी और शाम को चाहे मैं करूं या न करूं। रात में बैठक में कोई नहीं आ सकता बिना मेरी इच्छा के।

समझौता अभी तक चल रहा है। दोनों पार्टियों का एक दूसरे से कोई विरोध नहीं।

घूँसों के देश में

उन दिनों खाट पर पड़ा एक पाकिस्तानी अखबार देख रहा था इसलिये कि वहां के घूंसा-दौर का कुछ हाल मालूम हो जाय। इसी उधेड़बुन में पता नही कब आँखों ने अपनी ड्यूटी समाप्त करके छुट्टी करदी। मन पर्देके भीतर वे-पर्दगी देखनेके लिए चुपचाप हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के सैलानी मुसलमानों की तरह अटारी पार कर गया।

लाहौर के होटल मे पहले एक भिखारी से भेंट हुई—"बाबा खुदा की राह में......" एक अधन्ना उसे मैंने दिया। उसने नया सलाम मुक्का दिखाकर किया और चल दिया। कुछ देर बाद मेरी मेज़ पर यू० पी० से बिना परमिट सरहद पार किये एक व्यक्त आये और उन्होंने मुक्का दिखाया। मैने भी मुक्का दिखाकर उनका चेलेन्ज या नमस्कार स्वीकार किया। पांच-सात मिनट बाद टोपी में चोटी टिकाये और चेहरे की आधी हजामत बनाये एक और मुर्गअली आये और उन्होंने मेरे पास वाले को मुक्का दिखाया। आतें ही उन्होंने शिकायत की—रोज़ तुम्हारा इन्तजार करते थे। जी चाहता है तुम्हारी घूंसों से अक्ल दुरुस्त करदूं।"

दूसरा बोला—"रात तो तुम्हारी बहिन की है, दिन इस काम के लिये तुम्हारा रहा। रही सही अक्ल जो पाकिस्तान लाया हूँ उसे जल्दी ही खतम कराओ।"

"हिन्दुस्तान में रहकर अक्ल खराब होगई है शायद?"

"वहाँ कुछ खराब-शराब थी तो यहाँ आकर तो वह भी उड़ गयी।"

"खैर चलो आज सिनेमा चले, कक्कू का नाच है निगार सिनेमा में। बाद में बेगम लियाकतअली एक घूंसा जुलूस में शरकत करेंगी। जरा उन्हें भी देखना तुम्हारी कसम......।"

सिनेमा की रीलें चल रही थीं, बीच बीच में लियाकतअली की लियाकत का नमूना पेश किया गया। किसी ने ताली बजाई, किसी ने सीटी बजाई एक ने एक कुर्सी बेञ्च पर दे मारी। लियाकतअली को दाद देने में लड़कियां भी पीछे नहीं थी। एक ने जैसे ही बुर्के से घूंसा दिखलाया, वैसेही एक आवाज आई-"चारआने वाले पहले ही मरे पड़े हैं?"

दूसरी आवाज—"अबे, अम्मा और बहिनें नही है क्या ?"

तीसरी आवाज—"जोरू है, उसके भी रोज घूँसे खाते हैं !"

कुछ देर बाद राष्ट्रीय चिन्ह का सम्मान बन्द और खेल खतम हो चुका था। बाहर हथियारबन्द पुलिस के पहरे में बुर्कों पर सीने के पास घूँसा लगाये तथा चूड़ियों वाले हाथ ऊपर उठाये एक जलूस निकलरहा था ।

औरतों को सम्मान और राष्ट्रीय चिन्ह को इज्जत वहां भी बख्शी जा रही थी—"कहां लगाया है, जालिम ने घूँसा" कबरिस्तान के ६०-७० वर्ष के एक उम्मीदवार थोड़ीसी बकरे जैसी दाढी लगाये कह रहे थे।

खलीफा को अपनी पोती के घूंसे से घायल होते छोड हम आगे बढ़े। इस बार एक अखबार के दफ्तर में घुसे, अखबार के ऐडीटर एक मेज पर सर टिकाये जमीन या आसमान के किसी मुकाम की सैर कर रहे थे, लम्बी दाढ़ी, सामने रखी नीली दवात को प्यार कर रही थी और मियांजी के मुँह का बुरुश कुछ नीला, कुछ सफेद तथा काला होकर तिरंगा बन गया था। मियां को एक कातिब ने दोपहर के अंक के लिए मैटर की मांग करके जमीन पर उतारा।

'मैटर चाहिए।"

"कम्बख्त आज कोई न्यूज ही नहीं। रायटर वाले पैसे के न पहुँचने से अपनी मशीन उखाड़ ले गये।"

"कुछ तो दो"

"अमां, जाओ रसीदबेग से कहो, एकाध खबर घड़ दे कि पंजाबी लोग अमृतसर, जालंधर बगैरह वगैरह से भाग रहे हैं। फोरमैन के जाते ही मन राम भीं लाहौर से कराची कूच कर गये।